राजकमल मनोविज्ञान माला ६

हमारे जीवन का अर्थ

(भाग दो)

मिश्रित

डाक्टर एल्फ्रेड एडलर

H150
E2AH

"[illegible] अर्थ है—सहयोग। सहयोग की इस नींव पर ही हमारे वैयक्तिक और सामाजिक जीवन का ढांचा बनना आवश्यक है।" यही इस पुस्तक का मूल-सूत्र है।

राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186566
UNIVERSAL
LIBRARY

हमारे जीवन का अर्थ

(भाग दो)

लेखक की What Life Should Mean to You का अनुवाद

लेखक
डा० एल्फ्रेड एडलर

अनुवादक
श्री ओंप्रकाश

राजकमल प्रकाशन

प्रकाशक
राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड
दिल्ली।

मूल्य एक रुपया

मुद्रक
गोपीनाथ सेठ,
नवीन प्रेस, दिल्ली।

क्रम

भाग एक

१. जीवन का अर्थ

२. मन और शरीर

भाग दो

३. हीनता और श्रेष्ठता के भाव ५

४ प्रारम्भिक संस्मरण ३६

: ३ :

हीनता और श्रेष्ठता के भाव

मानव-मनोविज्ञान की अनेक महत्वपूर्ण खोजों में से एक खोज 'हीन-भाव' (इन्फीरिआरिटी कॉम्प्लैक्स) जगत् प्रसिद्ध हो गई दीखती है। कितने ही भिन्न सिद्धान्तों के मनोवैज्ञानिकों ने इस शब्द को भली प्रकार अपना लिया है और वे अपने दैनिक काम-काज में इसका प्रयोग करने लगे हैं। लेकिन वे इसे अच्छी तरह समझते हैं अथवा उत्तम अर्थों में इसका प्रयोग करते हैं, इसमें मुझे संदेह है। उदाहरण के लिए किसी रोगी को यह बताना कि वह हीनभाव से पीड़ित है, कदापि श्रेयस्कर सिद्ध न होगा। ऐसा करने से तो वह व्यक्ति उन हीन भावनाओं पर विजय पाने की बजाय अपने मन में उन्हें और भी महत्व देने लगेगा। अपनी जीवन-प्रणाली से वह जिस निरुत्साह का प्रदर्शन कर रहा है, वह अवश्य प्रत्यक्ष है। जहां भी उसमें उत्साह की कमी है वहीं हमें उसे उत्साह देना चाहिए। प्रत्येक स्नायु-रोगी (न्यूरोटिक) हीन-भाव का शिकार होता है। कोई भी ऐसा व्यक्ति अपने जैसे दूसरे व्यक्तियों से इस दृष्टि से भिन्न नहीं होता कि वह जिस हीन भाव से पीड़ित है, दूसरे उसके शिकार नहीं हैं। उसकी दूसरों से भिन्नता तो उस खास स्थिति में होती है, जिसमें कि वह अपने आपको जीवन की उपयोगी दिशा की ओर बढ़ाने

में सर्वथा असमर्थ पाता है। और अपने कार्यों और प्रयत्नों की जो सीमा अपने मन में बांध रखी है उसमें भी वह दूसरों से भिन्न होता है। 'तुम हीन-भाव के रोगी हो" केवल-मात्र यह कहना उसके लिए वैसे ही सहायक सिद्ध नहीं हो सकता जैसे कि किसी सिर-दर्द से पीड़ित व्यक्ति से यह कहना कि—"मैं तुम्हें बताऊं कि तुम्हें क्या कष्ट है तुम्हारा सिर दुख रहा है।"

बहुत से विकृत-स्नायु व्यक्तियों से यदि पूछा जाय कि क्या वह अपने को 'हीन' अनुभव करते हैं तो इसका उत्तर वे 'नहीं' में देंगे। कुछ तो प्रायः यह भी कह देंगे—"बल्कि इसके विपरीत मुझे खूब मालूम है कि अपने चारों ओर के लोगों से मैं श्रेष्ठ हूँ।" हमें पूछने की कोई आवश्यकता नहीं। हमें तो उस व्यक्ति के व्यवहार पर ध्यान देने की ही जरूरत है। यहां हम देखेंगे कि अपनी महत्ता में पूर्ण विश्वास बनाए रखने के लिए वह किन-किन चालाकियों से काम लेता है। उदाहरण के लिए यदि हम किसी ऐसे व्यक्ति से मिलें जो घमंडी हो तो हम इस बात का अनुमान लगा सकते हैं कि वह ऐसा अनुभव करता है कि "दूसरे लोग मेरी उपेक्षा करेंगे, परन्तु मुझे यह दरसाना ही है कि मैं भी कुछ हूँ।" यदि हम ऐसे व्यक्ति से मिलें जो बोलते समय अपने हाथ पांव भी जोर से झटकाता है तो हम अनुमान लगा सकते हैं कि उसके विचार इस प्रकार चलते हैं—"मेरी बोली तब तक कोई महत्व नहीं रखेगी जब तक स्वयं मैं उस पर जोर न दूं।" उस प्रत्येक व्यक्ति के पीछे जो दूसरों से अपने को श्रेष्ठ जताने का

असफल व्यवहार करता है, हम उन हीनता के भावों का अनुमान कर सकते है जिन्हें छिपाये रखने के लिए विशेष प्रयत्नों की आवश्यकता पड़ती है। यह तो वैसी ही बात है कि जैसे कोई व्यक्ति इस बात से डरे कि वह कद में छोटा है और अपने को बड़ा दरसाने के लिए पैरों की उंगलियों के बल चलने लगे। ऐसी ही भावना हम उन बच्चों में पाते हैं, जो अपने कद का मुकाबला कर रहे होते हैं। जिस बच्चे को अपने छोटे होने का भय हो वह जरा तनकर लम्बा खड़ा हो जायगा। वह अपने को अपने असली कद से लम्बा ही दिखाने की कोशिश करेगा। यदि हम किसी ऐसे बच्चे से पूछें कि "क्या तुम्हारा ख्याल है कि तुम बहुत छोटे हो ?" तो इस सत्य की पुष्टि की आशा हम उससे नहीं कर सकते।

अतएव यह आवश्यक नहीं है कि हीन भावों से आक्रान्त कोई भी व्यक्ति शान्त, नियन्त्रित, नम्र और दूसरे से दबनेवाला ही दीखे। हीन भाव तो सहस्रों भिन्न-भिन्न रूपों में अपने को प्रकट कर सकते हैं। कदाचित् इसे मैं उन तीन बच्चों की कहानी सुनाकर और भी स्पष्ट कर सकूं जिन्हें कि जीवन में पहली बार चिड़ियाघर ले जाया गया। जबकि वह शेर के पिंजरे के पास खड़े थे, उनमें से एक अपनी माता के दामन के पीछे छिप गया, और बोला, "मैं घर जाना चाहता हूँ।" दूसरा बच्चा जहां खड़ा था वहीं खड़ा रहा—लेकिन उसका रंग पीला पड़ गया, वह कांपने लगा और बोला, "मुझे तो जरा भी डर नहीं लग रहा है।" तीसरे

ने शेर की ओर आवेश से देखा और अपनी माता से पूछा—"क्या मैं इस पर थूक दूं?" वास्तव में तीनों बच्चे ही अपने को हीन अनुभव कर रहे थे; परन्तु तीनों ने इस भाव का प्रकाश भिन्न-भिन्न तरीकों से अपनी-अपनी जीवन-प्रणाली के अनुसार किया।

हीन-भाव कुछ-न-कुछ मात्रा में हम सभी में होते हैं क्योंकि हम सभी अपने को ऐसी दशाओं में पाते हैं कि जिनका हम सुधार चाहते हैं। यदि हमने अपना उत्साह बनाए रखा, तो इन भावों को दूर करने के लिए हम सीधे यथार्थवादी और सन्तोष-प्रद ढंग युक्त करने में जुटेंगे—अर्थात् परिस्थिति को ही सुधारने में प्रयत्नशील होंगे। कोई भी मनुष्य हीन भावों को लम्बे समय के लिए नहीं सह सकता, वह ऐसे आवेश (टेन्शन) से भर जायगा जबकि किसी-न-किसी प्रकार की हरकत आवश्यक हो जायगी। परन्तु मान लीजिए कि एक व्यक्ति निरुत्साहित हो चुका है और उसे यह विश्वास भी नहीं कि वास्तविक प्रयत्न करके वह स्थिति को सुधार सकता है। फिर भी वह अपने हीन भावों को सहने में असमर्थ होगा; उनसे पीछा छुड़ाने के लिए वह संघर्ष करेगा, परन्तु वह ऐसे साधनों का प्रयोग करेगा जो उसे उबार न सकेंगे। उसका ध्येय अभी "कठिनाइयों से अपने को श्रेष्ठतर" समझना है, परन्तु बाधाओं पर पार पाने के बजाय वह अपने को श्रेष्ठतर "समझने" में मुग्ध-प्राय करने अथवा इस सम्बन्ध में अपने को बेहोश रखने का प्रयत्न करेगा।

इसी बीच उसके हीन-भाव इकट्ठे होते जायंगे क्योंकि जो परिस्थितियां उनका कारण हैं वह यथापूर्व हैं। उत्तेजना तो पहले जैसी ही है। वह जो भी कदम उठायगा वह उसे और भी आत्म-प्रवञ्चना में धकेल देगा और उसकी सब समस्याएं नित नई आतुरता से उसे घेरने लगेंगी। यदि बिना जाने-बूझे हम उसकी हरकतों को देखें तो शायद उन्हें निरुद्देश्य ही समझें। वह ऐसी न दीखेंगी जो स्थिति को सुधार सकें। लेकिन जैसे ही हम यह समझ लेंगे कि दूसरों की तरह यह भी सुरक्षा और सम्पूर्णता के भावों के लिए संघर्ष कर रहा है परन्तु स्थिति में परिवर्तन लाने की आशा गंवा चुका है तो उसकी सब क्रियाएं हमारी समझ में आ जायंगी। यदि वह अपने को कमज़ोर अनुभव करता है तो वह ऐसी परिस्थितियों में चला जाता है जहां कि वह शक्तिशाली अनुभव कर सके। शक्तिशाली होकर अधिक उपयुक्त होने की शिक्षा वह नहीं लेता; अपनी ही आंखों में शक्तिशाली दीखने का वह अभ्यास करता है। अपने को इस तरह बेवकूफ बनाने के उसके प्रयत्न कुछ हद तक ही सफल होंगे। यदि वह व्यवसाय सम्बन्धी समस्याओं में अपनी तुच्छता अनुभव करता है, तो सम्भव है कि अपनी महत्ता के विषय में अपने को आश्वासन दिये रखने के लिए घर में अत्याचारी और कठोर बन कर रहे। इस तरह अपने को वह भुलावा दिये रख सकता है, परन्तु वास्तविक हीन-भाव उसके मन में ज्यों-के-त्यों बने रहेंगे। वह तो पहले की-सी परिस्थिति से पैदा पहले के-से हीन-भाव ही होंगे। वे उसके मानस पटल पर

अन्तरधारा की तरह बहते ही रहेंगे। ऐसे उदाहरण में हम वास्तव में हीन-भाव की बात कर सकते हैं।

अब हम हीन-भाव की परिभाषा कर सकते हैं। हीन-भाव एक ऐसी समस्या के प्रस्तुत होने पर उठते हैं जिसके लिए कोई व्यक्ति भली प्रकार उद्यत अथवा शिक्षित न हो और अपने इस विचार को प्रकट करे कि इस समस्या का हल वह नहीं कर सकता। इस परिभाषा से हम देख सकते हैं कि क्रोध हीन-भाव को उसी तरह व्यक्त कर सकता है जिस तरह आंसू और क्षमा-याचना। क्योंकि हीन-भाव सदा आवेश पैदा कर देते हैं उनकी प्रतिपूर्ति के रूप में मन सदा श्रेष्ठता की अनुभूति की ओर हरकत करता रहता है; परन्तु समस्या को सुलझाने की दृष्टि से यह कोई प्रयत्न नहीं होता। इसलिए श्रेष्ठता की अनुभूति की ओर प्रगति जीवन की निरर्थक दिशा की ओर प्रगति होती है। असली प्रश्न तो इस तरह प्रच्छन्न अथवा अछूता रह जाता है। वह व्यक्ति अपने कार्य क्षेत्र को सीमित करने की कोशिश करता है और सफलता की ओर बढ़ने की बजाय पराजय से बचने में अधिक जुटा रहता है। इस तरह कठिनाइयों कासामना होने पर वह एक झिझक का, एक जगह स्थिर रहने का या शायद डरकर भागने तक का चित्र बन जाता है।

इस प्रकार का दृष्टिकोण खुली जगह के भय (एगोराफोबिया) के रोग में सरलता से प्रत्यक्ष होता है। यह लक्षण इस आत्म-निश्चय की अभिव्यक्ति है—"मुझे बहुत आगे नहीं बढ़ जाना चाहिए। परिचित वातावरण में ही मुझे रहना है। जीवन खतरों

से भरा पड़ा है और उनसे सामना न हो—मेरा ऐसा यत्न होना चाहिए।" जहाँ यह दृष्टिकोण सतत रूप में जीवन में कार्यान्वित किया जा रहा हो, वहां ऐसा व्यक्ति अपने को एक ही कमरे में बन्द रखेगा, अथवा बिछौने में पड़ा रहेगा। कठिनाइयों का सामना करने से भागने का अत्युत्तम लक्षण आत्महत्या है। इसमें व्यक्ति जीवन की विभिन्न समस्याओं के आगे हार मान लेता है, अपने इस निश्चय को प्रकट करता है कि अपनी परिस्थितियों में इससे बेहतर वह कुछ नहीं कर सकता था। आत्महत्या में श्रेष्ठता के भावों की ओर प्रयत्न हम यह जान लेने पर समझ सकते हैं कि आत्महत्या सदा एक शिकायत अथवा बदला हुआ करती है। आत्महत्या करने वाला व्यक्ति अपनी आत्महत्या का उत्तरदायित्व दूसरे के माथे मढ़ता है। प्रत्येक आत्महत्या में हमें कोई-न-कोई ऐसा व्यक्ति अवश्य मिलेगा जिससे कि आत्महत्या करने वाला यह शब्द कह रहा हो—"इस दुनिया के लोगों में मैं सबसे कोमल और भावुक व्यक्ति था, लेकिन तुम मुझसे सदैव नृशंसता का व्यवहार करते रहे।"

कुछ-न-कुछ हद तक सभी स्नायु-रोगी अपना कार्य-क्षेत्र—समस्त परिस्थितियों से अपना सम्पर्क—सीमित कर लेते हैं। जीवन की तीन वास्तविक समस्याओं को वह अपने से दूर रखते हैं, और अपने को उन्हीं परिस्थितियों तक परिमित रखते हैं जिन में कि वह अपने को सर्वोपरि अनुभव कर सकते हैं। इस तरह वह अपने लिए एक छोटा-सा निवास-गृह बना लेते हैं, दरवाजे बन्द कर लेते हैं, और आँधी, रोशनी और ताजा हवा से दूर

अपना जीवन बिताते हैं। दूसरों पर उन्हें रोब डालकर अथवा गिड़गिड़ा कर हावी होना है यह तो उनकी शिक्षा पर ही निर्भर होता है। वही ढङ्ग वह इस्तेमाल करते हैं जिसे परीक्षा में उन्होंने सर्वोत्तम और अपने उद्देश्य के लिए परमोपयोगी पाया है। कभी-कभी जब वह एक ढङ्ग से असन्तुष्ट हो जाते हैं तो दूसरा इस्तेमाल कर देखते हैं। दोनों में ध्येय तो एक ही है—परिस्थिति को सुधारने के यत्न किये बिना श्रेष्ठता के भावों की अनुभूति पा सकना। एक निरुत्साहित बच्चा जो यह जान जाय कि वह रो-चीख कर दूसरों पर छा सकता है--रोने चीखने वाला बनकर रह जायगा,और विकासके सीधे क्रमोपक्रम से रोने चीखने वाला बच्चा बड़ा होकर उदास प्रकृति वाला (मेलोन्कोलियॉक) बन जाता है। आँसू और शिकायतें जिसे कि मैंने "जल-शक्ति" (वाटर-पावर) कहकर पुकारा है—सहयोग को नष्ट-भ्रष्ट करने और दूसरों को गुलाम बना सकने में बहुत ही उपयुक्त सिद्ध हो सकती हैं। ऐसे लोगों में, जिस तरह कि झिझक, लज्जा और अपराध के भावों से पीड़ित लोगों में, हमें हीन-भाव प्रत्यक्ष ही दीख पड़ते हैं। यह लोग अपनी दुर्बलता और अपने हितों का ध्यान रखने की अपनी असमर्थता को तुरन्त स्वीकार कर लेते हैं। जिस बात को वह नजरों से छिपाते हैं वह उनके श्रेष्ठता के बढ़े-चढ़े ध्येय और हर सम्भव तरीकेसे सर्वप्रथम होने की उनकी इच्छा है। दूसरी ओर जिस बच्चे को शेखी बघारने की आदत हो वह देखने को तो अपने श्रेष्ठता के भावों को ही प्रत्यक्ष करता है, किन्तु यदि हम शब्दों के स्थान पर उसके व्यवहार का

निरीक्षण करें तो हम उसके अप्रकाशित हीन-भाव से परिचय पा सकेंगे।

अतिशय मातृ-प्रेम और पितृ-द्वेष (ओडिपस-काम्प्लेक्स) वास्तव में स्नायु-रोगी के "परिमित निवास-गृह" के एक उदाहरण से अधिक कुछ नहीं है। विस्तृत संसार में यदि प्रेम की समस्या से निपटने में किसी व्यक्ति को भय है तो भी इस समस्या से पीछा छुड़ाने में वह सफल नहीं हो सकेगा। यदि अपने कार्य-क्षेत्र को वह परिवार तक ही सीमित रखे तो यह जानने में हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि उसकी वैषयिक (सेक्सुअल) हल-चलें भी इसी सीमा में प्रस्फुटित होंगी। अरक्षा के अपने भावों से वह अपनी दिलचस्पी का दायरा अपने कुछ घनिष्ठ लोगों से परे नहीं फैला सका। उसे डर है कि जिस तरह दूसरों पर हावी रहने का वह अभ्यस्त है, अपरिचितों से वह ऐसा नहीं कर सकेगा। अतिशय मातृप्रेम के शिकार वह बच्चे होते हैं जिन्हें कि माताओं ने बचपन में अधिक लाड-प्यार में बिगाड़ दिया हो, जिन्हें यह विश्वास करने की शिक्षा मिली हो कि उनकी इच्छाओं को पूरा होने का ही वरदान प्राप्त है, और जो कभी यह न जान सके हों कि अपने स्वतन्त्र प्रयत्नों से घर की चहार-दीवारी के बाहर भी वह प्रेम और सौहार्द के पात्र हो सकते हैं। वयस्क होने पर भी वह अपनी माताओं के दामन से बंधे रहते हैं। प्रेम के क्षेत्र में भी वह बराबर की सहयोगिनी की चाह नहीं करते, एक सेविका चाहते हैं—ऐसी सेविका जिसके आश्रय पर वह उतने

निर्भर हो सकें जितना कि अपनी माता पर थे। शायद हम किसी भी बच्चे में अतिशय मातृ-प्रेम पैदा कर सकते हैं। हमें केवल इसी बात की जरूरत पड़ेगी कि उसकी माता उसे लाड़-प्यार से बिगाड़ दे, उसकी दिलचस्पी दूसरे लोगों तक न बढ़ने दे और साथ ही उसका पिता उससे स्नेह-शून्यता और उदासीनता का व्यवहार करे।

सीमित हलचल का यह चित्र स्नायु-विकृति (न्यूरोसिस) के हरेक लक्षण में मिलता है। तुतलाकर बोलने वाले की बोली में हमें यही 'झिझक' का दृष्टिकोण मिलेगा। जो थोड़ी भी सामाजिक भावना उसमें शेष है वह उसे अपने सहयोगियों से सम्बन्ध जोड़ने पर प्रेरित करती है परन्तु उसकी अपने विषय में क्षुद्र सम्मति, उसका यह भय कि वह कसौटी पर पूरा न उतर सकेगा, उसकी सामाजिक भावना से टक्कर खाती है और वह इस झिझक से अपनी बोली में तुतलाने लगता है। वह बच्चे जो कि स्कूल में "पिछलग्गुओं" में होते हैं, वह पुरुष और स्त्री, जो कि तीस वर्ष अथवा इससे अधिक आयु तक कोई व्यवसाय नहीं खोज सकते, या जिन्होंने विवाह की समस्या का सामना नहीं किया, विवश-स्नायु-रोगी, (कम्पल्शन न्यूराटिक्स) जो कि विवश होकर एक-सी ही क्रिया दुहराया करते हैं, वह लोग, जिन्हें कि नींद नहीं आती और जो इस तरह दिन के कर्तव्य-पालनसे पहले ही थकावट से चकनाचूर हो जाते हैं—उसी हीन-भाव को प्रत्यक्ष करते हैं जो जीवन-समस्याओं के हल करने की उनकी प्रगति में बाधा बन जाता है। हस्त-मैथुन,समयेतर स्खलन

(प्रीमेच्युर इजैक्युलेशन), नपुंसकता (इम्पोटेन्स) और विकृत-रति (पर्वर्शन)—यह सब, दूसरे लिङ्ग (अदर सेक्स) के प्रति अपर्याप्तता के भय के परिणामस्वरूप जीवन की एक अवरुद्ध धारा का प्रदर्शन करते हैं। यदि हम यह प्रश्न करें कि "तुम अपर्याप्ततासे इतना क्यों डरते हो ?" तो जो श्रेष्ठता का ध्येय बन चुका है वह प्रकट हो जायगा। इस प्रश्न के उत्तर में केवल यही कहा जा सकता है—"क्योंकि उस व्यक्ति ने अपने लिए सफलता का ध्येय बहुत ऊँचा बना रखा है।"

हमने यह कहा है कि हीन-भाव स्वयं अपने में अस्वाभाविक नहीं होते। मनुष्य जाति की स्थिति में उन्नति के यही कारण बन जाते हैं। उदाहरण के लिए स्वयं विज्ञान तभी उन्नतिशील हो सकता है जब लोगों को अपने अज्ञान का परिचय हो और भविष्य को पहले से जान लेने की आवश्यकता पड़े : यह मानव के अपनी समस्त परिस्थिति को सुधारने के, ब्रह्माण्ड को अधिकाधिक जानने के और इस पर अधिक नियन्त्रण पा सकने के प्रयत्नों का फल है। मुझे तो यहां तक जान पडता है कि हमारी सारी मानव-संस्कृति हीन-भावों की नींव पर ही टिकी है। यदि हम अपने भूमण्डल पर किसी बाह्य-दर्शक के आने की कल्पना कर सकें तो निश्चय ही उसका निष्कर्ष ऐसा होगा—"इस मनुष्य की सब संस्थाएं और सभाएं, सुरक्षा के प्रति इसके प्रयत्न, शरीर को गर्मी पहुंचाने के लिए इसके कपड़े, वर्षा से बचने के लिए इसकी छतें, सफर सरल करने के लिए इसकी सड़कें—निश्चय ही यह मानव अपने को सृष्टि का दुर्बलतम प्राणी समझता है।"

और कुछ बातों में मनुष्य सृष्टि के दुर्बलतम प्राणियों में से है है। हममें शेर अथवा गोरीला-सी ताकत नहीं है, और बहुत से अन्य पशु जीवन की कठिनाइयों का अकेले मुकाबिला करने के लिए हमसे बेहतर सुसज्जित होते हैं। कुछ पशु अपनी दुर्बलता की कमी को सङ्ग-साथ से पूरा कर लेते हैं—वह बड़े-बड़े झुण्डों में रहने लग जाते हैं। परन्तु मनुष्यों को ऐसे बहुमुखी और अगाध सहयोग की आवश्यकता होती है कि जिसका दुनिया में और कोई दृष्टान्त नहीं मिल सकता।

मनुष्य बचपन में विशेषतया दुर्बल होता है। कई वर्षों तक इसे सतत देखभाल और रक्षा की आवश्यकता होती है। क्योंकि हर मनुष्य कुछ समय के लिए मानव-मात्र में सबसे छोटा और सब से दुर्बल रह चुका होता है और क्योंकि बिना सहयोग के, मानव-मात्र पूर्णतया अपने वातावरण की दया पर आश्रित होगा, हम समझ सकते हैं कि एक बच्चे में जिसने सहयोग में अपने को शिक्षित नहीं किया, निराशा और स्थायी हीन-भाव के भाव भर जायंगे। हम यह भी समझ सकते हैं कि जीवन में समस्याएं तो अत्यधिक सहयोग करने वाले व्यक्ति के सामने भी उठती रहती हैं। कोई भी व्यक्ति अपने को श्रेष्ठता के अपने अन्तिम ध्येय तक पहुँचा हुआ नहीं पा सकता, न ही अपने वातावरण का निर्बाध स्वामी ही बन सकता है। जीवन तो बहुत थोड़े काल के लिए होता है; हमारे शरीर दुर्बल होते हैं; जीवन की तीनों समस्याओं में सदा बेहतर और पूर्णतर हल की गुंजायश रहेगी। हम सदा हल के समीप पहुँच सकते हैं; अपनी

इस सफलता पर सन्तोष करके चैन से नहीं बैठ सकते। हर दशा में हमारे प्रयत्न तो जारी ही रहेंगे, परन्तु सहयोग करने वाले व्यक्ति के प्रयत्न आशामय और प्रदान-शील होंगे और हम सब की सांझी परिस्थिति के सुधार और उन्नति की ओर निर्दिष्ट होंगे।

मेरे विचार में यह सत्य कि अन्त में हम अपने जीवन के उच्चतम ध्येय तक नहीं पहुँच सकते किसीको चिन्तित नहीं करेगा। यदि हम किसी एक ऐसे व्यक्ति अथवा मानव-मात्र के विषय में यह कल्पना कर सकें कि वह इस दशा तक पहुंच गए हैं कि जहां अब कोई कठिनाइयां नहीं रहीं, तो हमारे विचार में ऐसे वातावरण में जीवन बड़ा आकर्षण-हीन रह जायगा। तब तो होने वाली हर घटना का पहले से ही ज्ञान हो जायगा। पहले से ही हर बात का हिसाब लग जाया करेगा। और आने वाले दिन कोई भी अप्रत्याशित अवसर लेकर नहीं आयंगे; भविष्य में कोई भी प्रतीक्षा योग्य बात नहीं रह जायगी। जीवन में हमारी दिलचस्पी अनिश्चितता से ही आती है। यदि हम सब हर बात में निश्चित हो जायं, यदि हमें सब कुछ मालूम हो जाय तो न तो वाद-विवाद होंगे और न नए अन्वेषण ही। विज्ञान-शास्त्र तो समाप्त हो ही चुका होगा; हमारे चारों ओर का ब्रह्माण्ड एक दुहराई हुई कहानी से अधिक नहीं रह जायगा। कला और धर्म, जो अप्राप्त ध्येयों की कल्पना हमारे सामने रखकर हमें प्रफुल्लित रखते हैं, अब अर्थहीन हो जायंगे। हम सौभाग्यशाली हैं कि हमारा जीवन सरलता से नहीं बीतता। मनुष्यों के प्रयत्न निरन्तर होते रहते हैं और हम सदा नई-नई समस्याएं ढूंढ

अथवा गढ़ लेते हैं और सहयोग वा प्रदान के नए अवसर बना लेते हैं। स्नायु-रोगी तो आरम्भ में ही अपने को अवरुद्ध पाता है, उसके हल नीचे स्तर तक ही रह जाते हैं और तदनुसार उसकी कठिनाइयां महान् हो जाती हैं। साधारण व्यक्ति अपनी समस्याओं का हमेशा अच्छे-से-अच्छा हल ढूंढ लेता है; वह नित्य नई कठिनाइयों से मुठभेड़ करता है और नए हलों तक पहुँचता है। इस प्रकार वह दूसरों को 'प्रदान' कर पाता है। वह न तो पीछे रह जाता है न अपने साथी मानव का बोझ बनता है; विशेष अनुकम्पा की न उसे आवश्यकता होती है न वह इसकी मांग करता है; परन्तु अपनी सामाजिक भावनाओं के अनुसार अपनी कठिनाइयों को सुलझाने के लिए वह साहस और स्वतन्त्रता के साथ आगे बढ़ता चला जाता है।

प्रत्येक व्यक्तिके लिए श्रेष्ठता का ध्येय वैयक्तिक और अनुपम होता है। यह ध्येय जीवन को जो अर्थ उसने दिया है उस पर निर्भर होता है; और यह अर्थ शब्दों का विषय नहीं होता यह उसकी जीवन-प्रणाली में पिरोया रहता है और एक खुद गाए हुए गीत की तरह उसकी गूंज जीवन को घेरे रहती है। अपनी जीवन-प्रणाली में अपने ध्येय को वह इस स्पष्टता से प्रकाशित नहीं करता कि हम उससे सहसा परिचय प्राप्त कर लें। वह उसे धुंधले रूप में व्यक्त करता है और उससे पाये हुए इङ्गित-मात्र से ही हम उस अर्थ का अनुमान कर सकते हैं। किसी की जीवन-प्रणाली को समझना किसी कवि की कृति का समझने के समान

है। कवि को तो शब्दों का प्रयोग करना ही पड़ता है, परन्तु उस का अभिप्राय तो उन शब्दों से कहीं अधिक है जिनका वह प्रयोग करता है। उसके अभिप्राय का अधिकांश तो अनुमानगम्य ही होता है, पंक्तियों के बीच उसकी खोज करनी पड़ती है। यही वैयक्तिक जीवन-प्रणाली की दशा है जो अगाध और बहुत उलझी हुई सृष्टि हुआ करती है। मनोवैज्ञानिक को पंक्तियों के बीच में पढ़ना होगा; यह आवश्यक होगा कि जीवन अभिप्राय परखने की कला वह सीखे।

इससे भिन्न बात सम्भव भी नहीं है। जीवन के अर्थ जीवन के पहले चार या पांच वर्षों में लगाए जाते हैं और यह अर्थ किसी हिसाब से नहीं लगाए जाते। इनके लिए अंधेरे में टटोलना, ऐसे भाव अपना लेना जिन्हें पूरी तरह समझा नहीं जा सकता, इशारों को समझना और परिभाषाओं से उलझना पड़ता है। इसी तरह श्रेष्ठता का ध्येय टटोलने और अनुमान से ही स्थिर किया जाता है। यह जीवन के प्रयत्नों का ध्येय एक गतिमान प्रवृत्ति बन जाता है, किसी पूर्व-ज्ञात स्थिर-बिन्दु की तरह नहीं रह जाता। कोई भी व्यक्ति श्रेष्ठता के अपने ध्येय से इस तरह परिचित नहीं होता कि वह उसका पूरी तरह वर्णन कर सके। शायद उसे अपने व्यावसायिक उद्देश्यों का परिचय हो परन्तु यह तो उसके जीवन-लक्ष्य का अंश-मात्र ही होंगे। जहां उद्देश्य स्थूल और स्पष्ट हो भी चुका हो, वहां भी उस उद्देश्य की ओर प्रयत्न और प्रगति के हजारों ढङ्ग हो सकते हैं। उदाहरण के लिए एक आदमी डाक्टर बनना चाहेगा, परन्तु डाक्टर बनने

के भी कितने अर्थ हो सकते हैं। यही नहीं कि शायद वह आन्तरिक रोगों की औषधि का विशेषज्ञ या निदान-शास्त्र में पारङ्गत होना चाहे, परन्तु अपने कार्य-कलाप और व्यवहार में वह अपने में और दूसरों में अपनी दिलचस्पी की जो मात्रा है उसे स्पष्ट करेगा। हमें मालूम पड़ेगा कि किस हद तक दूसरों का सहायक होने में अपने को उसने शिक्षित किया है और किस सीमा में अपनी सहायता को वह सीमित रखता है। किसी विशिष्ट हीन-भाव की परिपूर्ति-स्वरूप उसने यह अपना उद्देश्य बना लिया है; और उसके व्यवसाय अथवा दूसरे स्थानों पर उसकी अभिव्यक्तियों से हम उस विशिष्ट भाव का अनुमान लगा सकते हैं जिसकी परिपूर्ति वह करना चाहता है। उदाहरणके लिए हम प्रायः देखते हैं कि अपने बचपन में डाक्टरोंको मृत्यु की वास्तविकता से परिचय हो चुका होता है और मानव-जीवन के अनिश्चित पहलुओं में मृत्यु ने ही उन पर सबसे अधिक प्रभाव डाला है। शायद किसी भाई की या माता पिता में से किसी की मृत्यु हो गई हो, और तदुपरान्त उनकी शिक्षा का विकास अपने वा दूसरों को मृत्यु के सामने अधिक सुरक्षित करनेकी राह को ढूंढने में हुआ हो। दूसरा मनुष्य शायद अपने उद्देश्य को अध्यापक बनने में प्रत्यक्ष करे; परन्तु यह बात हम जानते ही हैं कि अध्यापक किस तरह भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। यदि एक अध्यापक में सामाजिक भावना की कमी हो तो अध्यापक बनने में उसके श्रेष्ठता के भावों का ध्येय अपने से छोटों पर प्रभुत्व करने का होगा; शायद अपने से दुर्बल और कम अनु-

भव वालों में रह कर ही वह अपने को सुरक्षित अनुभव कर सके। एक ऐसा अध्यापक, जिसकी सामाजिक भावना पर्याप्त मात्रा में विकसित हो चुकी है, अपने विद्यार्थियों से बराबरी का व्यवहार करेगा। मानव की अवस्था को सुधारने की उसकी हार्दिक इच्छा होगी। यहां हमें यह लिख देना ही पर्याप्त होगा कि अध्यापकों की सामर्थ्य और दिलचस्पी किस तरह अलग-अलग प्रकार की होती है और यह अभिव्यक्तियां उनके ध्येयों के लिए किस तरह महत्वपूर्ण पाई जायंगी। जब एक ध्येय को स्थिर किया जाता है तो उस व्यक्ति के सामर्थ्यों को उस ध्येय के उपयुक्त बनाने के लिए काटना-छांटना और सीमित करना पड़ता है; परन्तु वह सम्पूर्ण उद्देश्य, वह मूल-प्रतिमा, सदा ही इन सीमाओं से उलझेगी और किसी-न-किसी तरह जीवन को दिये गए अर्थ को और श्रेष्ठता के अन्तिम ध्येय के प्रति प्रयत्नों को प्रकाशित करने की राह ढूंढ ही लेगी।

इसलिए प्रत्येक व्यक्ति की खोज करते हुए हमें सतह से नीचे देखना चाहिए। कोई भी व्यक्ति जिस तरीके से वह अपने ध्येय को स्थिर करता है उसे उसी तरह बदल सकता है जिस तरह अपने ध्येय की एक अभिव्यक्ति—व्यवसाय—को बदल सकता है। इस पर भी हम प्रच्छन्न सामञ्जस्यता–व्यक्तित्व के एकत्व—की तलाश कर सकते हैं। यह एकत्व तो सब अभिव्यक्तियों में स्थायी है। यदि हम एक साधारण त्रिकोण को लें और उसे भिन्न-भिन्न दशाओं में देखें तो प्रत्येक दशा में हमें नया त्रिकोण ही जान

पड़ेगा; परन्तु यदि हम ध्यान से देखें तो मालूम पड़ेगा कि प्रत्येक दशा में त्रिकोण वही है। इसी तरह ध्येय को प्रत्यक्ष करने की बात है। किसी एक अभिव्यक्तिमें ही ध्येय को पूर्णरूप से प्रत्यक्ष हुआ नहीं कह सकते परन्तु इसे हम सभी अभिव्यक्तियों में पहचान सकते हैं। हम किसी व्यक्ति से यह नहीं कह सकते—"श्रेष्ठता की ओर तुम्हारे प्रयत्न ऐसा या वैसा करने से सफल होसकेंगे—" श्रेष्ठता के लिए प्रयत्न घटाए-बढ़ाए जा सकते हैं; और जो व्यक्ति स्वास्थ्य और साधारण दशा के जितना समीप होगा वह किसी एक दिशा के अवरुद्ध होने पर अपने प्रयत्नों के लिए कितनी ही नई दिशाएं ढूंढ सकता है। केवल एक स्नायु-रोगी (न्यूरॉटिक) ही अपने ध्येय की स्थूल अभिव्यक्ति के विषय में इस तरह सोचता है—"मैं तो इसी दिशामें जाऊंगा, किसी भी दूसरी दिशा की ओर नहीं।"

किसी विशेष श्रेष्ठता के भाव और प्रयत्नों को परिलेखन कर लेने का औत्सुक्य हमें न होना चाहिए, परन्तु सभी ध्येयों में एक बात हम एक समान पायंगे—परमात्मा की तरह बनने का प्रयत्न। कई बार हम बच्चों को स्पष्टतया यह कहते भी सुनते हैं—"मेरी परमात्मा बनने की इच्छा है।" कई दार्शनिक भी इसी तरह सोचते रहे हैं और कई ऐसे शिक्षक मिलेंगे जो बच्चों को ईश्वर की तरह बनाने के लिए शिक्षित और अभ्यस्त करते हैं। पुरातन धार्मिक अनुशासनों में यही बात दीख पड़ती है; भक्त अपने को इस प्रकार बनाते थे कि वह ईश्वर-तुल्य हो जायं।

ईश्वर-तुल्य होने का यही विचार कुछ नम्रता से "महा-मानव" के विचार में निहित है। और अधिक न कह कर मैं इतना जरूर कहूँगा कि जब नीत्से (एक मशहूर जर्मन दार्शनिक) पागल हो गया था तो स्ट्रिन्डबर्ग को लिखे एक पत्र में उसने अपने हस्ताक्षर "शहीद" (क्रूसीफाईड) लिख कर किये। प्रायः पागल व्यक्ति श्रेष्ठता के अपने ध्येय स्पष्टरूप में व्यक्त करते हैं। वह कहा करते हैं—'मैं नेपोलियन हूँ"—अथवा—"मैं चीन का सम्राट हूँ।" सारे संसार के ध्यान का केन्द्र होने की, सभी ओर से देखे, सराहे जाने की, सारे संसार की बातचीत सुनने की और उससे बेतार के तार से सम्बन्धित होने की, भविष्य को पहले से ही जान लेने की, अलौकिक शक्तियाँ धारण करने की उनकी इच्छा रहती है। शायद अधिक बुद्धि-संगत तरीके से ईश्वर-तुल्य होने का उद्देश्य सब कुछ जानने की, संसार भर की बुद्धि हस्तगत करने की अथवा जीवन को अमर बनाने की इच्छा में आ प्रकट होता है। चाहे इस सांसारिक जीवन को हम अमर करना चाहें अथवा जन्म-जन्मान्तर तक पुनर्जन्म लेकर हम इस जगत् में आना चाहें, अथवा किसी दूसरे संसार में अमरत्व प्राप्त करने का स्वप्न देखें, यह सभी इच्छाएं परमात्मा जैसा बनने की इच्छा पर आश्रित हैं। धार्मिक शिक्षाओं में केवल परमात्मा को ही नित्य कहा जाता है, जो समय और सीमा के बन्धन से परे । मैं यहां इस बात का निवेदन नहीं कर रहा हूँ कि यह विचार गलत हैं या ठीक। यह तो जीवन की

व्याख्या है। यह एक अर्थ है, और कुछ हद तक हम सभी इस अर्थ के बन्धन में हैं—ईश्वर और ईश्वर से तद्रूपता। यहां तक कि नास्तिक भी ईश्वर को जीतने की, ईश्वर से ऊपर होने की इच्छा करता है, और हम देखते हैं कि श्रेष्ठता का यह उद्देश्य विशेषतया दृढ़ हुआ करता है।

श्रेष्ठता के उद्देश्य के एक बार स्थिर हो जाने के बाद फिर जीवन-प्रणाली में कोई भूल नहीं की जाती। उस व्यक्ति की आदतें और व्यक्त लक्षण उस स्थूल उद्देश्य तक पहुँचने के लिए बिलकुल उपयुक्त होते हैं; उनकी आलोचना नहीं की जाती। प्रत्येक समस्यात्मक बच्चा, प्रत्येक स्नायु रोगी, प्रत्येक शराबी, अपराधी अथवा विकृत-रति का अभ्यस्त (सेक्स्वल पर्वर्ट), जिसे उसने श्रेष्ठता की दशा मान लिया हुआ है, उसे प्राप्त करने के लिए उपयुक्त गति और हलचल कर रहा होता है। केवल उसके इन लक्षणों पर ही हमला करना असम्भव है। यह तो वही लक्षण हैं जो निर्दिष्ट उद्देश्य के लिए होने आवश्यक हैं। एक स्कूल में एक लड़के से जो अपनी श्रेणी में सबसे सुस्त और आलसी था उसके अध्यापक ने पूछा—"क्या बात है कि तुम अपना काम भली-भांति नहीं कर पाते हो ?" उसने उत्तर दिया—"यदि मैं यहां सबसे आलसी लड़का रहूं तो आप सदा मुझ ही से उलझे रहेंगे। आप कभी उन लड़कों पर ध्यान नहीं देते जो भले हैं, जो शोर-दङ्गा नहीं करते और अपना काम ठीक कर लाते हैं।" जब तक उस लड़के का यही उद्देश्य था कि अपने अध्यापक का ध्यान आकर्षित करे और

उस पर प्रभुत्व करे, उसने ऐसा करने का सर्वोत्तम मार्ग खोज लिया हुआ था। उससे उसका आलस्य छुड़वाने का यत्न निरर्थक है। इस आलस्य की तो उसे अपने उद्देश्यके लिए जरूरत है। वह बिलकुल ठीक कर रहा है, और यदि वह अपने व्यवहार को बदलने की कोशिश करे तो वह बेवकूफ होगा। एक दूसरा लड़का घर में बड़ा आज्ञाकारी था लेकिन वह मन्द-बुद्धि दीख पड़ता था; स्कूल की पढ़ाई में भी वह पीछे रहता था और घर पर भी हाजिर-जवाब नहीं था। उससे दो वर्ष बड़ा उसका एक भाई था, और यह भाई अपनी जीवन-प्रणाली में इससे बिलकुल भिन्न था। यह कुशाग्र-बुद्धि और चुस्त था लेकिन अपनी शरारतोंकी वजह से सदा कठिनाईमें पड़ जाया करता था। एक दिन छोटा भाई बड़े भाइ से यह कहना सुना गया—"तुम्हारे जैसा शरारती होने से तो यही अच्छा है कि मैं ऐसा ही मन्द-बुद्धि रहूं।" यदि हम उसके कठिनाइयों से बचे रहने के उद्देश्य को ठीक ठहराएं तो उसकी मन्दबुद्धि वास्तव में अक्लमन्दी थी। क्योंकि वह मन्द-बुद्धि था इसलिए उससे दूसरों को उम्मीद भी बहुत कम थी और यदि वह गलतियां करता था तो उसका दोष उस पर मढ़ा नहीं जाता था। यदि उसका उद्देश्य ठीक समझा जाय तो उसका मन्द-बुद्धि न होना बेवकूफी कहलाए।

आज तक उपचार-प्रथा तो यही रही है कि लक्षणों पर हमला किया जाय। वैयक्तिक मनोविज्ञान इस दृष्टिकोण का नितान्त विरोधी है—औषधी के प्रसङ्ग में भी और शिक्षा के प्रसङ्ग में

भी। जब एक लड़का गणित में कमजोर होता है अथवा स्कूल से उसकी शिकायतें आती हैं, तो यह अर्थहीन होगा कि हम केवल इन्हीं बातों पर अपना ध्यान केन्द्रित करें और इन्हीं विशेष अभिव्यक्तियों में उसका सुधार करने का प्रयत्न करें। शायद वह अध्यापक को ही तङ्ग करना चाहता हो? शायद इस तरह की हरकतें करके अपना नाम कटवा कर स्कूल से ही छुट्टी पाना चाहता हो। यदि हम एक बात में उसे सुधार देंगे तो अपने उद्देश्य तक पहुँचने के लिए वह नया रास्ता ढूंढ लेगा। ठीक ऐसा ही वयस्क स्नायु-रोगी होता है। उदाहरण के लिए हम मान लें कि वह सतत सिर-दर्द से पीड़ित रहता है। उसका सिर-दर्द उसे बहुत लाभदायक हो सकता है, और हो सकता है कि बहुत जरूरत के समय पर ही यह हुआ करे। अपने सिर-दर्द के बहाने समाज की उलझनों को सुलझाने से वह बच सकता है। हो सकता है सिर-दर्द तभी शुरु हो जब उसे अपरिचितों से भेंट करनी हो अथवा कोई नया निश्चय करना हो। इसके साथ ही दफ्तर के कर्मचारियों अथवा अपने परिवार और स्त्री के प्रति क्रूर होने का बहाना बनकर यह सहायक सिद्ध हो सकती है। हम यह क्यों समझें कि इस प्रकार परीक्षित साधनको वह त्याग देगा। उस के आधुनिक दृष्टिकोण से तो जो दर्द वह अपने को देता है वह अच्छे काम में लगाई हुई पूंजी ही है। इस पूंजी से जिन-जिन लाभों की वह आशा कर सकता है वह सभी उसको प्राप्त होते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उसके सिर-दर्द की ऐसी परिभाषा

देकर हम उससे इस लक्षण को वैसे ही दूर करवा सकते हैं जैसे युद्ध के स्नायु-रोगियों को उनके लक्षणों से बिजली के धक्के अथवा चीर-फाड़ का डर दिखाकर हटाया जाता था। कदाचित् इस लक्षण को औषधि-उपचार भी ठीक कर सके, और हम चुने हुए लक्षण को बनाए रखनेमें उसके लिए कठिनाइयां पैदा करदे। परन्तु जब तक उसका उद्देश्य यथा-पूर्व रहेगा तब तक एक लक्षण के छूट जाने पर वह दूसरा खोज लेगा। सिर-दर्द के "ठीक" हो जाने पर नींद न आने का रोग अथवा कोई नया लक्षण लगा होगा। जब तक उसका उद्देश्य वही रहेगा, उसे उसकी प्राप्ति के यत्न करने ही हैं। ऐसे स्नायु-रोगी मिलते हैं जो आश्चर्य-प्रद शीघ्रता से पुराने लक्षण त्याग देते हैं और बिना किसी हिचकिचाहट के नए लक्षण उत्पन्न कर लेते हैं। वह स्नायु-रोग के लक्षणों को अपनाने में निपुण बन जाते हैं और अपने ज्ञान-भण्डार का नित्य नया विस्तार करते चले जाते हैं। मनोवैज्ञानिक-निदान-शास्त्र की किसी पुस्तक का पाठ उन्हें नई-नई स्नायविक कठिनाइयां बतला देगा जिनकी परीक्षा का अवसर उन्हें अब तक नहीं मिला। हमें तो उस ध्येय का जिसके लिए कि वह लक्षण अपनाया गया है, और श्रेष्ठता के साधारण उद्देश्य से उस ध्येय की जो सामञ्जस्यता है उसीकी ओर ध्यान रखना चाहिए।

मान लीजिए कि अपनी क्लास के कमरे में मैं एक सीढ़ी मंगवाता हूँ, उस पर चढ़ता हूँ और ब्लैक बोर्ड के ऊपर जाकर बैठ जाता हूं। मुझे जो भी देखेगा यही सोचेगा—"डाक्टर एड-लर निश्चय ही पागल हो गए हैं।" उन्हें यह नहीं पता होगा कि

सीढ़ी क्यों मंगवाई, ऊपर क्यों चढ़ा और उस अजीब दशा में क्यों बैठा हूँ। परन्तु यदि उन्हें यह पता हो कि—"वह ब्लैकबोर्ड पर इसलिए बैठना चाहता है कि जब तक वह दूसरे लोगों से स्पष्टरूप में ऊंचा और बड़ा न अनुभव करे तो वह अपने को हीन अनुभव करता है, वह तभी अपने को सुरक्षित समझेगा जब कि वह ऊपर से अपनी क्लास को नीचा देख सके—" तो मुझे इतना पागल नहीं समझेंगे। अपने स्थूल उद्देश्य को प्राप्त करने का मैंने बढ़िया तरीका इस्तेमाल किया होगा। इस हालत में सीढ़ी भी बुद्धि-संगत जंचने लगेगी और उस पर चढ़ने के मेरे प्रयत्न भी योजनानुसार और सुघटित जंचने लगेंगे। केवल एक बात में ही मैं पागल कहलाऊंगा और यह श्रेष्ठता की मेरी परिभाषा होगी। यदि मुझे एक बात का विश्वास हो जाय कि मैंने अपने उद्देश्य को ठीक नहीं चुना है तभी मैं अपने तरीके को बदल सकूंगा। परन्तु यदि मेरा उद्देश्य यथापूर्व स्थिर रहे और मेरी सीढ़ी हटा ली जाय तो मैं देखूंगा कि किस हद तक उछल कूद करके मैं सफल हो सकता हूँ। ठीक ऐसे ही प्रत्येक स्नायु-रोगी के साथ बीतती है; साधनों के चुनाव में वह किसी बात को भी बुरा नहीं समझता। वह आलोचना से दूर होता है। हम तो केवल उसके स्थूल उद्देश्य का सुधार कर सकते हैं। उद्देश्य को बदलने से मानसिक अभ्यास और दृष्टिकोण भी बदल जायंगे। अब उसे पुरानी आदतों और पुराने रवैये की आवश्यकता नहीं रहेगी,

और नई आदतें और नया रवैया जो उसके नए उद्देश्य से मेल खायेंगे, उनकी जगह ले लेगा।

यहाँ तीस वर्ष की आयु की उस स्त्री का उदाहरण लीजिए जो चिन्ता-ग्रस्त रहती थी। वह सहेलियां और मित्र बनाने की असमर्थता के रोग के उपचार के लिए मेरे पास आई। व्यवसाय की समस्या को सुलझाने में भी वह कुछ न कर पाई थी और परिणाम-स्वरूप अब तक अपने परिवार का बोझ बनी हुई थी। अब तक स्टेनोग्राफर अथवा सेक्रेटरी की छोटी-मोटी नौकरी वह करती भी थी परन्तु एक दुर्भाग्यमय नियति के फलस्वरूप उसके मालिक सदा ही उससे प्रेम जतलाने लगते थे और वह इतनी भयभीत हो जाती थी कि उसे दफ्तर छोड़ना पड़ता था। लेकिन उसे एक बार ऐसी जगह मिल गई जहाँ उसका मालिक उसमें अधिक दिलचस्पी नहीं लेता था। इस पर उसने अपनेको इतना तिरस्कृत अनुभव किया कि वह नौकरी ही छोड़ दी। कई वर्षों से—मैं समझता हूं कि आठ वर्षों से—उसका मनोवैज्ञानिक उपचार हो रहा था परन्तु उसका उपचार उसे सामाजिक शिक्षा देने में अथवा ऐसी स्थिति में ले आने में सफल नहीं हो सका था जहाँ कि वह अपना जीविकोपार्जन कर सकती।

जब मैंने उसे देखा तो उसकी जीवन-प्रणाली का मूल उसके बचपन के आरम्भ के वर्षों में पाया। जो बचपन को समझने का प्रयत्न नहीं करता वह वयस्क को नहीं समझ सकता। वह अपने परिवार में सबसे छोटी, बड़ी सुन्दर और लाड प्यार के आधिक्य

के कारण बहुत बिगड़ चुकी थी। उस समय उसके माता-पिता धनी-मानी, सब तरह सम्पन्न थे और जैसे ही वह कोई इच्छा प्रकट करती तुरन्त ही उसे पूरा किया जाता था। जब मैंने यह सब सुना तो कहा, "क्यों—तुम्हें तो एक रानी की तरह पाला गया है।" उसने उत्तर दिया—"यह तो सच अचम्भे की बात है, क्योंकि मुझे सभी रानी कहकर ही पुकारा करते थे।" मैंने उसके सबसे पहले संस्मरण के विषय में पूछा। उसने बताया "जब मैं चार वर्ष की थी मुझे याद है कि एक बार मैं घर के बाहर गई और कुछ बच्चों को एक खेल खेलते हुए देखा। ठहर-ठहर कर वह उछल पड़ते थे और चिल्लाते थे 'चुड़ैल आ रही है।' मैं बड़ी डर गई और जब घर पहुंची तब एक बूढ़ी स्त्री से, जो हमारे घर ही ठहरी हुई थी, मैंने पूछा कि क्या सच ही चुड़ैलें हुआ करती हैं। उसने जवाब दिया—'हाँ—चुड़ैलें भी होती हैं, चोर भी, और डाकू भी, और तुम्हें उठा ले जाने के लिए वह आयंगे।" इससे हम देख सकते हैं कि घर में अकेले रह जाने से वह डरने लगी और अपने इस डर कोउसने अपनी सारी जीवन-प्रणाली में व्यक्त किया। घर को छोड़ने में वह अपने को दृढ़ और समर्थ नहीं पाती थी,और परिवार के सदस्योंको उसे हर प्रकारसे आश्रय देना, अथवा उसका ध्यान करना पड़ता था। एक दूसरा संस्मरण जो उसे याद था इस तरह था—"मुझे एक पुरुष पियानो सिखाने पर नियुक्त था, और एक दिन उसने मुझे चूमने की कोशिश की। मैंने पियानो बजाना छोड़ा, मां के पास गई और उससे कह

दिया। उसके बाद पियानो सीखने की मेरी कभी इच्छा नहीं हुई।" यहाँ भी हमें जान पड़ेगा कि अपने और पुरुषों के बीच में काफी फासला रखने का अभ्यास उसने किया है, और उसका यौन-विकास (सेक्स्वल डिवलपमेंट) अपने को प्रेम से बचाए रखने के उद्देश्य के मुताबिक ही था। वह समझती थी कि प्रेम दुर्बलता की निशानी है। यहाँ मैं यह कह दूं कि कई लोग प्रेम में होने पर दुर्बल अनुभव किया करते हैं; और कुछ हद तक वह ठीक होते हैं। यदि हम में प्रेम उमड़ आया है तो हम कोमल हो जायंगे। एक दूसरे व्यक्ति में हमारी दिलचस्पी हमें अशान्ति का शिकार बना सकती है। केवल वही व्यक्ति प्रेम की पारस्परिक निर्भरता से बचे रहने का यत्न करेगा जिसका श्रेष्ठता संबंधी ध्येय यह कहता है—"मुझे कभी दुर्बल नहीं होना है, मुझे कभी भी अरक्षित नहीं रहना है।" ऐसे लोग अपने को प्रेम से दूर ले जाने का अभ्यास करते हैं और उसके लिए सम्यग्तया उद्यत नहीं होते। आप प्रायः यह देखेंगे कि जब कभी वह अपने को प्रेम में पड़ने के खतरे में समझते हैं तो वह उस स्थिति को उपहास में उड़ा देते हैं। जिस व्यक्ति से वह समझते हैं कि उन्हें खतरा है उसकी वह खिल्ली उड़ाते हैं और उसे चिढ़ाते हैं। इस तरह अपने दुर्बलता के भावों से वह बच निकलने की कोशिश करते हैं।

यह लड़की भी, जब वह प्रेम और विवाह की बात सोचती थी तो अनुभव करती थी कि यह उसकी कमजोरी है, परिणाम-

स्वरूप जब नौकरी के दिनों में मनुष्यों ने उससे प्रेम जतलाया तो वह आवश्यकता से अधिक प्रभावित हुई। नौकरी छोड़कर भाग जाने के अतिरिक्त उसे दूसरा मार्ग ही नहीं सूझा। अभी ये समस्याएं उसे उलझाए हुए ही थीं कि उसके माता और पिता दोनों का देहान्त हो गया और उसकी जी-हजूरी के दिन प्रायः समाप्त ही हो गए। उसने दौड़-धूप करके फिर ऐसे सम्बन्धी जमा कर लिये जो उसका ध्यान करने लग गए, परन्तु अब उसकी दशा इतनी सन्तोषप्रद नहीं थी। कुछ समय के बाद उसके सम्बन्धी ऊब जाते थे, और जितना वह समझती थी कि उसे ध्यान की जरूरत है उतना ही उसका ख्याल रखना बन्द कर देते थे। इस पर वह उन्हें भला-बुरा कहती थी और उन्हें बताती थी कि उसे इस तरह अकेला छोड़ देना कितना खतरनाक है। इस तरह स्वावलम्बी होने की दुर्घटना से वह अपने को बचाती रही। मुझे निश्चय है कि यदि उसके परिवार वालों ने उसका ध्यान रखना बिलकुल छोड़ दिया होता तो वह पागल हो जाती। श्रेष्ठता के अपने उद्देश्य को प्राप्त करने का उसके पास एक ही ढंग था और वह यह कि वह अपने परिवार को अपना पालन-पोषण करने पर मजबूर करे और इस तरह जीवन के सारे प्रश्नों को दूर रखने में सामर्थ्यवान हो। उसके मन में यही चित्र रहता था—"मैं इस भूमण्डल से सम्बन्धित नहीं हूँ, परन्तु एक दूसरे भूमण्डल से सम्बन्धित हूं जहां कि मैं एक रानी हूं। यह क्षुद्र दुनिया मुझे तिल भर भी

नहीं समझती और न मेरी महत्ता को स्वीकार करती है ।" इन विचारों की दिशा में वह एक पग और उठाती तो पागल हो जाती; परन्तु जब तक उसके पास छोटे-मोटे दूसरे साधन थे और वह अभी भी सम्बन्धियों को और परिवार के मित्रों को अपना ध्यान रखने के लिए जुटा सकती थी, उसने अन्तिम पग उठाने की जरूरत महसूस नहीं की ।

एक दूसरा उदाहरण लीजिए जहां कि हीनता और श्रेष्ठता दोनों प्रकार के भावों को स्पष्टतया पहचाना जा सकता है । मेरे पास एक सोलह वर्ष की एक ऐसी लड़की भेजी गई जो ६ या ७ वर्ष की आयु से चोरी करना सीख गई थी और १२ वर्ष की आयु से जब-तब रात-रात भर लड़कों के साथ घर से बाहर रहा करती थी । जब वह दो वर्ष की थी तो उसके माता-पिता में एक लम्बे और कटु संघर्ष के बाद तलाक हो गया था । उसकी मां नानी के पास रहने के लिए उसे ले गई और जैसा कि प्रायः हो जाता है, उसकी नानी ने लाड़-प्यार से उसे बिगाड़ना शुरू किया । उसका जन्म तब हुआ था जब उसके माता-पिता में संघर्ष का जोर था । इसलिए उसका जन्म माता को प्रिय नहीं था । उसे कभी अपनी बेटी अच्छी नहीं लगी थी और उन दोनों में एक खिंचाव रहता था । जब लड़की मेरे पास आई तो मैंने दोस्ताना ढग से बातचीत की । मुझे उसने बताया—"मुझे चोरी करना अथवा लड़कों के साथ घूमना अच्छा नहीं लगता, परन्तु मुझे तो मां को दिखाना होता है कि वह मुझे काबू

में नहीं रख सकती।" मैंने उससे पूछा—"तो क्या बदले की भावना से ऐसा करती हो ?" उसका उत्तर था—"शायद ऐसा ही।" उसकी इच्छा थी कि वह अपने को माता से अधिक बलवती सिद्ध कर सके, परन्तु यह उद्देश्य केवल उसके दुर्बल अनुभव करने के ही कारण था। उसका विचार था कि उसकी माता उसे पसन्द नहीं करती थी और वह हीन भावों से पीड़ित थी। श्रेष्ठता को दरशाने का यह एक ही तरीका सोच सकी और वह उलझनें पैदा करना था। जब बच्चे चोरियां करते हैं अथवा किसी दूसरी तरह की बुराइयों में पड़ते हैं, तो प्रायः यह बदले की भावना से होता है।

एक पन्द्रह वर्ष की लड़की आठ दिन लापता रही। पकड़े जाने पर बच्चों के लिए एक विशेष अदालत में उसे ले जाया गया और वहां उसने ऐसी कहानी सुनाई कि 'एक आदमी उसका अपहरण करके ले गया, वहां एक बन्द कमरे में आठ दिन तक एक खम्भे से बांधकर उसे रखा गया।' इस कहानी पर किसी ने विश्वास नहीं किया। डाक्टर ने उससे बड़ी घनिष्टता से बातचीत की और सचाई कह देने के लिए प्रेरणा की। अपनी कहानी पर अविश्वास करने के लिए वह उस पर इतना क्रुद्ध हो गई कि उसने डाक्टर के मुंह पर तमाचा दे मारा। जब मैं उससे मिला तो मैंने उससे पूछा कि वह क्या बनना चाहती है। मैंने उसे यह विश्वास दिलाया कि मेरी दिलचस्पी केवल उसके

भविष्य में और उसे ठीक-ठीक सहायता दे सकने में है। जब मैंने उसके किसी स्वप्न के विषय में पूछा तो वह हंसी और यह स्वप्न बताया—"मैं एक शराब की दूकान में थी। जब मैं बाहर निकली तो मां मिली। कुछ ही देर में पिता भी आ गए और मैंने माता से कहा मुझे कहीं छिपा ले ताकि वह मुझे न देख सकें।" वह अपने पिता से भयभीत थी और उन्हींसे लड़ रही थी। वह उन्हें सजा दिया करते थे और क्योंकि वह दण्ड से डरती थी, इसलिए उसे झूठ बोलना पड़ता था। जहां भी झूठ बोलने का मामला दीखे, हमें उसका कारण कठोर माता अथवा पिता में तलाश करना पड़ेगा। झूठ तब तक बिलकुल ही निरर्थक होगा जब तक कि सच बोलना खतरनाक न समझा जाय। दूसरी ओर हम देखते हैं कि इस लड़की का कुछ हद तक अपनी माता से सहयोग था। अब मुझे इसने बताया कि कोई आदमी इसे शराब की दूकान में प्रलोभित करके ले गया था और वहां ही इसने आठ दिन बिताए। यह स्वीकार कर लेने में उसे अपने पिता से डर था; परन्तु साथ-ही-साथ उसका व्यवहार अपने पिता पर आक्रमणात्मक भाव से ही प्रेरित हुआ था। उसका विचार था कि उसके पिता ने उसे गुलाम बनाया हुआ है और उन्हें आघात पहुँचा कर ही वह अपने को विजयी अनुभव कर सकती है।

इस प्रकार के लोगों को, जिन्होंने श्रेष्ठता की ओर गलत कदम उठाया है, किस तरह सहायता दी जा सकती है? यह इतना कठिन नहीं है यदि हम यह समझ जायं कि श्रेष्ठता की ओर

प्रयत्न सभी मनुष्यों में होते हैं। यह समझ चुकने पर हम खुद को उनकी स्थिति में रखें और उनके संघर्ष से सहानुभूति करें। वह जो एक भूल करते हैं वह यह है कि उनके प्रयत्न जीवन की निरर्थक दिशा की ओर निर्दिष्ट होते हैं। श्रेष्ठता की ओर प्रगति ही सब मानव-सृजन के पीछे होती है और यही हमारी संस्कृति के संवर्धन का स्रोत भी होती है। क्रियाशीलता की इसी दिशा की ओर समस्त मानवीय जीवन आगे बढ़ता है—नीचे से ऊपर की ओर, ऋण से धन की ओर, पराजय से विजय की ओर। लेकिन जो व्यक्ति जीवन की समस्याओं का वास्तव में सामना कर सकते हैं और उन पर विजय पा सकते हैं वह वही होते हैं जो अपने प्रयत्नों में सभी को लाभ पहुँचाने की प्रवृत्ति दिखाते हैं, जो इस तरह आगे बढ़ते हैं कि दूसरे भी फायदा उठाएं। यदि लोगों से हम ठीक तरीके से बात करें तो उन्हें विश्वास दिलानेमें हम कठिनाई नहीं पायंगे। अन्त में लाभ और सफलता के सभी मानवीय-निष्कर्ष सहयोग की नींव पर ही टिके होते हैं। यह भूमि मानव-जाति का सांझा, सहयोग-मय स्थान है। व्यवहार, आदर्श, उद्देश्य, सक्रियता और चरित्र से हमारी इतनी ही अपेक्षा है कि इनकी प्रगति मानव-सहयोग की ओर होनी चाहिए। हम ऐसा व्यक्ति कहीं भी न पायंगे जो पूर्णतया सामाजिक भावना रहित हो। स्नायु-रोगी और अपराधी भी इस ज्ञात-रहस्य से परिचित होते हैं। उनका इस सम्बन्ध में ज्ञान अपनी जीवन-प्रणाली को युक्ति-संगत सिद्ध करने के प्रयत्नों में

अथवा उत्तरदायित्व को दूसरों पर थोपने में प्रत्यत्न होता है। पर हां, जीवन की उपयोगी दिशा की ओर बढ़ने में वह हिम्मत हार चुके होते हैं। एक हीन-भाव उन्हें कहता रहता है—"सहयोग में तुम्हें सफलता नहीं मिल सकती।" जीवन की वास्तविक समस्याओं से वह मुख मोड़ लेते हैं और अपनी शक्ति का खुद को आश्वासन दिये रखने के लिए समस्याओं की छाया से जूझते रहते हैं।

श्रम के मानवीय बटवारे में कितने ही प्रकार के स्थूल उद्देश्यों को स्थान मिल सकता है। शायद जैसा कि हमने देखा है सभी उद्देश्यों में कुछ-न-कुछ भूल सम्भव है, और आलोचना करने के लिए हमें कोई-न-कोई बात मिल ही जायगी। किसी बच्चे के लिए गणित में विशिष्टता प्राप्त करने में ही श्रेष्ठता रहेगी, दूसरे के लिए कला-कृति में, तीसरे के लिए शारीरिक शक्ति में। जिस बच्चे की पाचन-शक्ति दुर्बल होगी वह यह सोचने लगेगा कि उसे केवल आहार की समस्याओं का ही मुकाबला करना है। उसकी दिलचस्पी खाने-पीने के सामान पर ही केन्द्रित होने लगेगी क्योंकि वह सोचता है कि वह इसी तरह अपनी स्थिति को सुधार सकता है। परिणामस्वरूप वह एक चतुर रसोइया अथवा आहार-विज्ञान का अध्यापक बन सकता है। इन सभी विशेष उद्देश्यों में एक वास्तविक क्षति-पूर्ति के साथ-साथ कुछ सम्भावनाओं का परित्याग, अपने को सीमित करने का कुछ प्रयास हमें दीख पड़ेगा। उदाहरण के लिए हम यह समझ सकेंगे कि जब-

तब एक दार्शनिक को सोचने और अपनी पुस्तकें लिखने के लिए समाज से अपने को दूर हटाना पड़ता है, परन्तु यदि श्रेष्ठता के उद्देश्य के साथ सामाजिक भावना की प्रचुर मात्रा सम्बन्धित हो तो ऐसी भूल कभी भी गम्भीर नहीं होती। हमारे सहयोग को तो महत्वाकांक्षाओं की आवश्यकता हुआ करती है।

: ४ :

प्रारम्भिक संस्मरण

क्योंकि प्रभुत्व की दशा तक पहुँचने का संघर्ष समूचे व्यक्तित्व की कुंजी के समान है, अतः व्यक्ति के मानस-जीवन (साइकिक लाइफ) के हर पहलू में हम इसे पायंगे। इस सचाई को समझ जाने से किसी वैयक्तिक जीवन-प्रणाली से परिचय पाने के कार्य में हमें दो बड़ी सहायताएं मिलेंगी। पहली यह कि हम जहां से चाहें इस परिचयके कार्यको शुरु कर सकते हैं। प्रत्येक अभिव्यक्ति हमें एक ही दिशा की ओर ले जायगी—उसी अभिप्राय की ओर, अन्ततम की उसी गीतिका की ओर, जिसकी लय पर हमारे व्यक्तित्व का ताल चलता है। दूसरी यह कि सामान का बृहत् भण्डार हमें मिलता है। प्रत्येक शब्द,विचार अनुभूति अथवा इंगित, हमारे परिचय में वृद्धि करता है। किसी एक अभिव्यक्ति पर विचार करते हुए यदि जल्दी में हम कोई भूल कर बैठें तो उसे सहस्रों दूसरी अभिव्यक्तियों द्वारा फिर से देखा-भाला और शुद्ध किया जा सकता है। हम तब तक स्थायी रूप में किसी एक अभिव्यक्ति का अर्थ निश्चित नहीं कर सकते जब तक 'सम्पूर्ण' में उसका स्थान नहीं समझ लेते, परन्तु प्रत्येक अभिव्यक्ति एक ही बात कह रही होती है, प्रत्येक अभिव्यक्ति प्रश्न के उत्तर की ओर ही हमें प्रेरित करती है। हम तो खण्डहरों के उन वस्तु-शास्त्र-वेत्ताओं की तरह हैं जिन्हें

मिट्टी से बने बर्तनों के टुकड़े, हथियार, औजार, मकानों की ध्वस्त दीवारें, टूटे-फूटे स्मारक और भोजपत्र के लेख मिलते हैं, और इन्हीं अं-भ्रंश टुकड़ों से एक समस्त नगर के जीवन को जानना शुरु करते हैं जो बहुत दिन पूर्व नष्ट हो चुका है। परन्तु यहां तो हम ऐसी चीजसे व्यस्त हैं जो नष्ट नहीं होचुकी,हम मानव-सत्ता के अन्तर से सम्बन्धित पहलुओं सहित एक जागृत व्यक्तित्व का अध्ययन कर रहे हैं जो हमारे सम्मुख अपने अभिप्राय और अर्थ का नित-नूतन प्रकाश किया करता है।

किसी मनुष्य को समझ लेना सहज काम नहीं है। कदाचित सब मनोविज्ञान-शास्त्रों में से वैयक्तिक मनोविज्ञान को पढ़ना-सीखना और उसका अभ्यास करना कठिन है। हमें तो सदैव 'सम्पूर्ण' की ओर कान लगाने पड़ते हैं। हमें तब तक संशय और सन्देह नहीं छोड़ना है जब तक कि कुंजी बिल्कुल प्रत्यक्ष न हो जाय। किस तरह एक मनुष्य दरवाजे के भीतर प्रवेश करता है, किस तरह वह प्रणाम करता है, हाथ मिलाता है, किस तरह मुसकराता है, किस तरह बातचीत करता है, ऐसी छोटी-छोटी अनगणित चेष्टाओं से हमें संकेत इकट्ठे करने हैं। हो सकता है कि किसी बात में हम धोखे में आ जायं, परन्तु सुधारने अथवा पुष्टि करने के लिए कितने ही दूसरे इंगित हमें मिलेंगे। स्वयं उपचार भी सहयोग में अभ्यास और सहयोग में परीक्षा के समान है। हम तभी सफल हो सकते हैं जबकि हमारी उसमें हार्दिक दिलचस्पी हो।हमें उसकी आंखोंसे देखने और

उसके कानों से सुनने के लिए तैयार रहना चाहिए। हमारी सांझी समझ-बूझ में उसे अपना भाग प्रदान करना ही है। हमें उसके दृष्टिकोण और उसकी कठिनाइयों को मिलकर एक साथ स्पष्ट करना है। यदि हम यह भी अनुभव करें कि हमने उसे समझ लिया है तब भी जब तक वह न समझ ले तो हमारे ठीक होने की गवाही कौन देगा? एक पटुता-हीन सत्य कभी सम्पूर्ण सत्य नहीं हो सकता; यह तो यही दरशाता है कि हमारी समझ पर्याप्त नहीं थी। कदाचित् इसी बात को पूर्णतया समझ न सकने के कारण दूसरे मनोविज्ञान-वेत्ताओं ने "नकारात्मक और स्वीकारात्मक स्थानान्तर" (नैगेटिव और पाज़िटिव ट्रान्सफरेन्सिज़) के विचार को प्रस्तुत किया है। यह ऐसे सिद्धान्त हैं जो वैयक्तिक मनोविज्ञान में नहीं मिलते। जिस रोगी को बिगाड़े जाने की लत पड़ चुकी है, हो सकता है कि उसे बिगाड़ने से सरलता से उसका सौहार्द जीत लिया जाय; परन्तु दूसरों पर हावी होने की उसकी इच्छा उसके अन्दर स्पष्ट जान पड़ेगी। यदि हम उसका निरादर करें या उस पर ध्यान न दें तो हम तुरन्त उसकी शत्रुता के भागी बनेंगे। वह उपचार कराने से इन्कार कर देगा, अथवा उपचार को वह केवल अपने को न्याय-संगत सिद्ध करने या हमसे अफसोस प्रकट करवाने के लिए जारी रखेगा। उसे बिगाड़कर अथवा उसका निरादर करके हम उसे कोई सहायता नहीं पहुँचा सकते। हमें तो उसे एक मनुष्य की दूसरे मनुष्य के प्रति दिलचस्पी दिखानी है। इस दिलचस्पी से

ऊंची कोई सच्ची या निर्जेतर (आब्जेक्टिव) दिलचस्पी नहीं है। उसके अपने लाभ के लिए और दूसरों की भलाई के लिए उसकी भूलों का पता लगाने के उद्देश्य से हमको उससे सहयोग करना ही है। इस ध्येय को सामने रखने से "परिवर्तनों" को उकसाने का, अपने को पूर्णतया ज्ञानी दरशाने का, अथवा उसे परमुखापेक्षी बनाने और अनुत्तरदायित्व की दिशा में गिरा देने का भय नहीं रह जायगा।

अन्तर्तम की अभिव्यक्तियों में से सबसे अधिक प्रत्यक्षदर्शी (रिवीलिंग) तो किसी व्यक्ति के संस्मरण हुआ करते हैं। उसके संस्मरण तो उसे उसकी सीमाएं और परिस्थितियों के अभिप्राय जतलाने वाली वे बातें हुआ करती हैं जिन्हें वह हरदम साथ लिये घूमता है। "आकस्मिक संस्मरण" (चान्स मेमोरीज़) तो कभी नहीं होते; उन अनगिनत प्रभावों में से जिनका कि एक व्यक्तिको सामना करना पड़ता है वह केवल उन्हें ही याद रखनेके लिए चुन लेता है जिनके विषय में (चाहे कितना ही अनजाने) वह यह अनुभव करता है कि उसकी परिस्थिति से वह घनिष्टतया सम्बन्धित हैं। इस प्रकार उसके संस्मरण तो 'मेरी आत्मकथा'के समान होते हैं—ऐसी कथा जिसे अपने को जागरूक रखने अथवा दिलासा देने के लिए, अपने उद्देश्य पर एकनिष्ठ टिके रहने के लिए, पुराने अनुभवों के साधन से भविष्य की अनुभूत क्रिया-प्रणाली बरत कर मुकाबला करने की तैयारी के लिए वह दोह-

राना रहता है ! संस्मरणों का प्रयोग एक विशेष प्रकार की चित्त-अवस्था (मूड) बनाये रखने के लिए तो स्पष्टतया दैनिक व्यवहार में देखा जा सकता है । यदि किसी व्यक्ति की कहीं हार हो जाय और उससे वह निरुत्साहित हो तो वह हार के पिछले अवसर याद करने लग जाता है । यदि वह उससे व्याकुल हो तो उसके सब संस्मरण भी अवसादमय हो जाते हैं। जब वह आल्हाद और उल्लास लिये हुए अपने को साहसी अनुभव करे तो वह दूसरे प्रकार की स्मृतियां चुनता है । जिन घटनाओं को वह चुनता है वह सुन्दर होती हैं, वह उसके आशावाद की सम्पुष्टि करती हैं । इसी तरह यदि वह यह अनुभव करे कि किसी समस्या से वह घिर चुका है तो ऐसी स्मृतियों का आवाहन करेगा जो उसकी ऐसी चित्त-अवस्था बनाने में सहायता देंगी जिसमें उसे उस समस्या से जूझना है । अतः संस्मरण प्रायः वैसा ही उद्देश्य पूरा करते हैं जैसा कि स्वप्न । जब किन्हीं निर्णयों पर पहुँचना होता है तो कितने ही मनुष्योंको उन परीक्षाओं के विषयमें स्वप्न आते हैं जिनमें वह उत्तीर्ण हो चुके हैं । अपने निर्णयों को वह परीक्षाओं के रूप में लेते हैं और उसी चित्त-अवस्था का पुनर्सृजन करना चाहते हैं जिसमें कि वह पहले भी सफल हो चुके हैं । किसी वैयक्तिक जीवन-प्रणाली में चित्त-अवस्था की भिन्नताओं के विषय में जो कहा जा सकता है वही साधारणतया उसकी चित्त-अवस्था के निर्माण और अवशेष के विषय में कहा जा

सकता है। एक उदासीन पुरुष यदि अपनी सफलता और आनंद की घड़ियां गिनने लगे तो वह उदासीन नहीं रह सकता। वह अपने मन को यह कहकर समझाता है--"मैं सारा जीवन अभागा रहा हूँ"; और तदनुसार वह उन्हीं घटनाओं की याद करेगा जिनका अर्थ वह अपने दुर्भाग्य में लगा सकता है। संस्मरण जीवन-प्रणाली के विरोध में कभी नहीं हो सकते। यदि किसी व्यक्ति के श्रेष्ठता के उद्देश्य की यह मांग है कि—"दूसरे लोग सदा मेरा तिरस्कार करते हैं--" तो वह उन्हीं घटनाओं को चुनेगा जिन्हें कि अपमान का अर्थ दे सके। जैसे-जैसे और जिस हद तक उसकी जीवन-प्रणाली में परिवर्तन होगा, उसके संस्मरण भी वैसे-ही-वैसे बदलते जायेंगे, उसे भिन्न घटनाएं याद हो आयंगी अथवा जो घटनाएं उसे याद हैं उनके नये और भिन्न अर्थ वह लगाने लगेगा।

प्रारम्भिक संस्मरणों का विशेष महत्व होता है। एक तो वे जीवन-प्रणाली का प्रारम्भिक रूप सरलतम अभिव्यक्ति में दिखाते हैं, दूसरे हम उनसे यह पता लगा सकते हैं कि बच्चे को लाड़-प्यार से बिगाड़ा जा रहा था अथवा उसकी उपेक्षा की जा रही थी। किस हद तक दूसरों से सहयोग करने की वह शिक्षा पा रहा था किससे सहयोग करना उसे पसन्द था, उसके सामने क्या उलझनें थीं और किस तरह वह उनसे संघर्ष कर रहा था। ऐसे बच्चे की प्रारम्भिक स्मृतियों में जिसे आंखों की कमजोरी से देखने में कठिनाई होती हो और जिसने ध्यान से देखने की

आदत डाल ली हो—हम दृष्टि-सम्बन्धी संस्मरण पायेंगे। उसकी स्मृति इस तरह शुरू होगी—"मैंने चारों ओर देखा...", अथवा वह रङ्ग-रूप का वर्णन करेगा। एक बच्चा जिसे चलने-फिरने में कठिनाई हुई हो, जो चलना, भागना अथवा कूदना चाहता रहा हो, इन्हीं इच्छाओं को अपने संस्मरणों में प्रकट करेगा। जो दिलचस्पियां और इच्छाएं बचपन से ही याद हैं वह निश्चित ही किसी व्यक्ति की मुख्य दिलचस्पी और इच्छा के करीब होंगी; और यदि हमें किसी की मुख्य दिलचस्पी का पता चल जाय तो हम उसके उद्देश्य और उसकी जीवन-प्रणाली से भी परिचित हो जाते हैं। यही बात प्रारम्भिक संस्मरणों को व्यावसायिक शिक्षण के क्षेत्र में इतने महत्व की बनाती है। हम बच्चे के माता-पिता और परिवार के दूसरे सदस्यों के प्रति सम्बन्ध भी खोज सकते हैं। यह संस्मरण सही हैं या गलत, यह अधिक महत्व की बात नहीं है, इनके विषय में सर्वाधिक महत्व की बात तो व्यक्ति का वह निष्कर्ष है जिसे वह दरशाते हैं—"बचपन में भी मैं ऐसा या वैसा व्यक्ति था—" अथवा -"बचपन में भी मैंने संसार को ऐसा पाया।"

सबसे अधिक ज्ञानदायक तो वह ढङ्ग है जिससे कि वह अपनी कहानी कहना शुरू करता है, वह पहली-से-पहली घटना जिसे वह याद कर सकता है। पहला संस्मरण ही व्यक्ति के जीवन के प्रति मौलिक दृष्टिकोण को स्पष्ट कर देगा जो उसके दृष्टिकोण का पहला सन्तोषप्रद स्थूलीकरण होता है। इससे हमें

एक ही दृष्टि में उस बिन्दु को देखने का अवसर मिल जाता है जिसे कि उसने अपने विकास का प्रारम्भ मान लिया हुआ है। मैं कभी भी किसी व्यक्तित्व का विवेचन पहला संस्मरण बिना पूछे नहीं करता। कभी-कभी लोग कोई उत्तर नहीं देते अथवा यह कह देते हैं कि कौनसी घटना पहले हुई इसका उन्हें भान ही नहीं है, परन्तु यह बात भी स्वयं अप्रत्यक्ष पर प्रकाश डालने वाली है। हम जान सकेंगे कि वह अपने मौलिक अभिप्राय पर बातचीत नहीं करना चाहते और वह सहयोग के लिए तैयार नहीं हैं। वैसे साधारणतया लोग अपने प्रारम्भिक संस्मरणों पर बहस करने के लिए तैयार हुआ करते हैं। वह उन्हें केवल घटना के रूपमें लेते हैं और उनमें छिपे अर्थों को नही समझते। शायद ही कोई प्रारम्भिक संस्मरण के अर्थ समझता हो, और इस तरह बहुत-से लोग जीवन में अपना उद्देश्य, दूसरों से अपने सम्बन्ध और परिस्थितिके विषय में अपने विचार बिल्कुल साधारण तरीके और बिना किसी झिझकके पहले संस्मरणों के माध्यम से अङ्गीकार कर लेते हैं। पहले संस्मरणों में दिलचस्पी की एक और बात यह है कि वह सूत्र-रूप में गुथे हुए और सरल होते हैं, और इससे हम उनका प्रयोग बड़े पैमानों पर अन्वेषण और परीक्षण में कर सकते हैं। स्कूल की किसी क्लास के लड़कों को हम अपने प्राथमिक संस्मरण लिखने के लिए कह सकते हैं; और यदि हम उनका अर्थ लगाना जानते हों तो हर लड़के का बड़ा महत्वपूर्ण चित्र हम पा लेते हैं।

उदाहरण के लिए मैं यहां कुछ प्रारम्भिक संस्मरण देता हूँ और उनका अर्थ लगाने की कोशिश करता हूँ। इन संस्मरणों के अतिरिक्त इन व्यक्तियों के विषय में मैं और कुछ नहीं जानता—यह भी नहीं जानता कि वह बच्चे हैं या वयस्क। उनकी प्राथमिक स्मृतियों में हम जो अर्थ पायंगे उसे उनके व्यक्तित्व की दूसरी अभिव्यक्तियों से हमें मिलाना पड़ेगा परन्तु अपने अभ्यास और अनुमान लगाने के सामर्थ्य को बढ़ाने के लिए हम उनका प्रयोग तो कर ही सकते हैं। हमें यह पता चल जायगा कि क्या बात ठीक हो सकती है और एक स्मृति की दूसरी स्मृति से हम तुलना कर सकेंगे। विशेषता हम यह जान सकेंगे कि कोई व्यक्ति सहयोग की शिक्षा पा रहा है अथवा इसके विरुद्ध, वह सबल है अथवा निरुत्साहित, क्या वह दूसरों का समर्थन और ध्यान पाए रखना चाहता है अथवा आत्म-निर्भर और स्वतन्त्र होना चाहता है, क्या वह कुछ 'प्रदान' करने के लिए भी तैयार है अथवा केवल लेने के लिए ही चिन्तित है।

१—"क्योंकि मेरी बहन..." यह देखना महत्वपूर्ण है कि परिस्थिति और वातावरण के कौनसे व्यक्ति प्राथमिक संस्मरणों में स्थान पाते हैं। जब यह व्यक्ति बहन हो तो हम प्रायः सदैव इस अनुमान में ठीक होंगे कि वह व्यक्ति बहन से बहुत प्रभावित हुआ है। बहन ने इस दूसरे बच्चे के विकास पर छाया डाली हुई है। साधारणतया हम दोनों में एक होड़, प्रतिद्वन्द्विता, पायंगे—जैसे कि वह दोनों किसी प्रतियोगिता में भाग ले रहे

हों और हम समझ सकेंगे कि इस तरह की होड़ विकासमें अधिक कठिनाइयां डाल देती है।जब बच्चा प्रतिद्वन्द्वितामें जूझा हुआ होतो वह दूसरोंमें अपनी दिलचस्पी उस तरह नहीं पैदा कर सकता जब कि वह दूसरों से दोस्ती से सहयोग करने को तैयार हो। अस्तु, हमें निष्कर्षों पर अनुमान नहीं लगाना चाहिए—शायद यह दोनों बच्चे अच्छे मित्र ही रहे हों।

"क्योंकि मेरी बहन और मैं परिवार में सबसे छोटे थे, मुझे तब तक स्कूल नहीं जाने दिया गया जब तक कि वह भी (जोकि छोटी थी) स्कूल जाने योग्य नहीं हो गई।" अब छिपी हुई प्रतिद्वन्द्विता स्पष्ट है। मेरी बहन मेरी राह का कांटा थी। वह छोटी थी, लेकिन मुझे उसके लिए रोक रखा गया। उसने मेरी सम्भावनाओं को सीमित किया। यदि संस्मरण का यही अर्थ ठीक है तो हमें इस लड़के अथवा लड़की के विचारों की अपेक्षा करनी चाहिए—"मेरे जीवन में सबसे बड़ा खतरा तो तब पैदा होता है जब कोई मेरे लिए बाधा बन जाता है और मेरे स्वतन्त्र विकास को रोकता है।" शायद यह संस्मरण किसी लड़की का है। यह बहुत सम्भव नहीं है कि किसी लड़के को तब तक रोक रखा जाय जब तक कि उसकी छोटी बहन स्कूल जाने योग्य न हो जाय।

"तदनुसार हमने पढ़ाई एक ही दिन शुरू की।" इस प्रकार की शिक्षा को इस स्थिति की लड़की के लिए हम अच्छी नहीं कह सकते। शायद इससे उस पर यही प्रभाव पड़ जाय कि क्यों-

कि वह बड़ी है, उसे पीछे ही रुकना चाहिए। जो भी हो हम देखते हैं कि इस लड़की ने तो इस बात का यही अर्थ लगाया है। उसका विचार है कि उसकी छोटी बहन का पक्ष लेकर उसकी उपेक्षा की जाती है। इस उपेक्षा का उत्तरदायित्व वह किसी के कन्धों पर डालेगी, और शायद वह माता को ही अपराधी ठहराए। हमें यह जानने पर आश्चर्य होना चाहिए कि वह अधिकतर पिता की ओर झुक गई और पिता की लाडली बनने की उसने कोशिश की।

"मुझे अच्छी तरह याद है कि जिस दिन हम पहले-पहल स्कूल गये तो माता ने हर-एक को बताया कि किस तरह वह अपने को अकेली अनुभव करती रही। उसने कहा—दोपहर बाद मैं कितनी ही बार दरवाजेके बाहर भागकर गई और लड़कियोंकी राह देखती रही। मुझे ख्याल आता था जैसे कि वह कभी नहीं आयंगी।"यहां उसने माता का वर्णन कर दिया है, और यह ऐसा वर्णन है जो उसे बुद्धिपूर्वक व्यवहार करते हुए नहीं दिखाता। यह तो लड़कीका बनाया हुआ माताका चित्र है। "सोचती थी कि हम कभी नहीं आयंगी—" स्पष्ट है कि माता में ममता थी और लड़कियां इस ममता से परिचित थीं; परन्तु साथ-ही-साथ वह चिन्तित रहने वाली और आतुरतापूर्ण थी। यदि लड़की से हम बातचीत कर सकते तो माता के छोटी लड़की के प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार की ओर बातें वह हमें बताती। लेकिन ऐसे पक्षपातपूर्ण व्यवहार से भी हम हैरान नहीं होंगे क्योंकि

परिवार के सबसे छोटे सदस्य से प्रायः सदा ही लाड़-प्यार किया जाता है। इस समूचे प्राथमिक संस्मरण से मैं इस नतीजे पर पहुँचूंगा कि बड़ी लड़की को यह विचार रहा है कि छोटी बहनकी प्रतिद्वन्द्विता के कारण वह आबद्ध रही है। बड़ी उमर में ईर्ष्या और प्रतिद्वन्द्विता की सम्भावना और भय रहेगा। हमें यह जानकर भी आश्चर्य नहीं होगा कि यदि वह अपने से कम आयु की सभी औरतों को नापसन्द करे। कुछ लोग सारी उमर भर अपने को बूढ़ा अनुभव किया करते हैं और बहुत-सी ईर्ष्यालु स्त्रियां अपने से छोटी आयु की स्त्रियों से अपने को हीनतर अनुभव किया करती हैं।

२—"मेरी सर्व-प्रथम स्मृति तो अपने नाना की शव-यात्रा की है, जबकि मैं तीन वर्ष की थी।" यह एक लड़की ने लिखा है। मृत्यु के सत्य ने उस पर गम्भीर प्रभाव डाला है। इसका क्या अर्थ है? मृत्यु को उसने जीवन के प्रति अतीव अनिश्चितता और सबसे बड़े भय के रूप में देखा है। बचपन में जो घटनाएं उससे बीतीं उनसे उसने यह निष्कर्ष निकाला—"नाना मर सकते हैं।" शायद हमें यह भी पता चले कि वह नाना की बड़ी लाड़ली था और लाड़-प्यार से उन्होंने उसे बिगाड़ रखा था। प्रायः सभी नाना अपने दोहतों को बिगाड़ा करते हैं। बच्चों की ओर उनकी जवाबदेही माता-पिता से कम हुआ करती है और प्रायः उनका यत्न होता है कि बच्चे उनसे घुल-मिल जायं और वह दिखा सकें कि अब भी वह उनका प्यार पा सकते हैं।

हमारी संस्कृति बड़े बूढ़ों के लिए अपनी योग्यता में विश्वास रखना नहीं सिखाती और कई बार भिन्न-भिन्न तरीकों से इस विषय में वह विश्वस्त होना चाहते हैं—उदाहरण के लिए झगड़ालू बनकर। यहां हम यह अनुमान लगाना चाहते हैं कि नाना ने इस लड़की को, जबकि वह बच्ची ही थी, बिगाड़ रखा था और इसी लाड़-प्यार ने उन्हें बच्चे की गहरी स्मृति में उतार दिया था। जब उनकी मृत्यु हुई, बच्ची ने इसे बड़ा आघात समझा, जैसे एक साथी और भक्त उससे छिन गया।

"उन्हें कफन में पड़ा हुआ—सफेद और शान्त—देखना मुझे खूब याद है।" एक तीन वर्षके बच्चेको मैं नहीं समझता हूँ कि एक मृत शरीर देखने की इजाजत देना ठीक बात है। कम-से-कम बच्चे को इस दृश्य को देखने के लिए तैयार कर लेना चाहिए। मुझे कितने हो बच्चों ने बताया है कि किसी शव को देखकर वह कितनी गम्भीरता से प्रभावित हुए हैं और वे इस दृश्य को कभी नहीं भूल सकते। यह लड़की भी इसे नहीं भूल सकी। ऐसे बच्चे मृत्यु के भय को कम करने की अथवा उसे वश में करने की कोशिश किया करते हैं। प्रायः उनकी तीव्र अभिलाषा डाक्टर बनने की हो जाया करती है। वह सोचते हैं कि मौत से लड़ने के लिए डाक्टर ही दूसरों से अधिक उपयुक्त हुआ करते हैं। यदि किसी डाक्टर से उसकी पहली स्मृति के विषयमें पूछा जाय तो प्रायः उसमें किसी-न-किसी मृत्यु का संस्मरण रहेगा। "कफन में पड़ा हुआ, सफेद और शान्त...."

यह स्पष्टतया दीखने वाली घटना का संस्मरण है। यह लड़की शायद दर्शक प्रकार (विज़ुअल टाइप) की है जो दुनिया को अच्छी तरह देखने में दिलचस्पी लेते हैं।

"और कब्रिस्तान में जबकि शव को कब्र में उतारा गया तो कठोर बक्से के नीचे से रस्सियों को निकालने की बात भी मुझे याद है।" फिर वह बता रही है जो कुछ कि उसने देखा और हमें यह निश्चय हो जाता है कि वह ठीक दर्शक प्रकार की ही है। "इस अनुभवसे यह परिणाम हुआ कि जब अपने किसी सम्बन्धी, मित्र अथवा परिचित के परलोक-गमन की बात मैं सुनती हूं तो भय से कंपकंपी आ जाती है।"

मृत्यु ने जो उस पर गम्भीर प्रभाव डाला है वह फिर प्रत्यक्ष हो जाता है। यदि उससे बात करने का मुझे अवसर मिलता तो मैं पूछता—"बड़ी होकर तुम क्या बनना चाहती हो?" और कदाचित् वह यह उत्तर देती कि "डाक्टर"। यदि वह कोई उत्तर न देती अथवा इस प्रश्न से बचना चाहती तो मैं स्वयं ही कहता—"क्या तुम डाक्टर अथवा नर्स बनना पसन्द नहीं करोगी?" जब वह "परलोक-गमन" की बात करती है तो यह बात मृत्यु के डर से परिपूर्ति (कम्पेन्सेशन) का एक ढंग मालूम पड़ती है। उसके संस्मरण से वैसे हमें यह ज्ञान हुआ है कि उसके नाना का उसके प्रति मैत्री का व्यवहार था, वह दर्शक प्रकार की है और उसके मन में मृत्यु को बड़ा महत्त्व दिया जाता है। जीवन का जो अर्थ उसने समझा है वह है—"हम सबको मरना है।"

निस्संदेह यह सत्य है, परन्तु सभी में यही मुख्य दिलचस्पी था, ऐसा हम नहीं पायंगे। दूसरी बातें भी हैं जो हमारा ध्यान आकर्षित कर सकती हैं।

३—"जब मैं तीन वर्ष की थी, मेरे पिता..."ठीक आरम्भ में ही पिता का वर्णन आरम्भ हो गया है। हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि यह लड़की माता से अधिक अपने पिता में दिलचस्पी लेती थी। पिता में दिलचस्पी विकास के दूसरे पहलू की बात हुआ करती है। पहले तो बच्चा माता ही में अधिक दिलचस्पी लेता है क्योंकि पहले एक या दो वर्ष में माता से सहयोग घनिष्ठ हुआ करता है। बच्चे को पद-पद पर माता की जरूरत हुआ करती है और वह नितान्त उसी पर निर्भर होता है, बच्चे की सभी आन्तरिक अभिलाषाएं माता से ही सम्बन्धित होती हैं। यदि बच्चा पिता की ओर झुक जाय तो माता तो जैसे हार चुकी। इसका अर्थ है कि बच्चा अपनी परिस्थिति से सन्तुष्ट नहीं है। ऐसा प्रायः परिवार में किसी छोटे बच्चे के जन्म पर हुआ करता है। इस संस्मरण में यदि हमें छोटे बच्चे का पता चले तो हमारे अनुमान की सम्पुष्टि हो जायगी।

"मेरे पिता ने हमारे लिए टट्टुओं का जोड़ा खरीदा।" अब देखा कि दो बच्चे हैं; दूसरे बच्चे के विषय में कुछ और सुनने के लिए हम लालायित हैं। "उनकी लगाम पकड़कर वह उन्हें घर ले आए। मेरी बहन जोकि मुझसे तीन वर्ष बड़ी थी...।" हमें अपना अनुमान बदलना पड़ेगा। हम सोचते थे कि यह लड़की

बड़ी बहन होगी परन्तु यह तो छोटी सिद्ध हुई। कदाचित् बड़ी बहन माता की अधिक लाड़ली हो और इसी कारण इस लड़की ने अपने पिता और दो टट्टुओं के तोहफे का वर्णन किया है।

"मेरी बहन ने एक लगाम को पकड़ा और बड़ी शान से बाजार से गुजरी।" बड़ी बहन की जीत का यह नमूना देखिए। "मेरा अपना टट्टू दूसरे के पीछे तेज चलता हुआ, सरपट चला गया—" यह परिणाम है उसके—बहन के अगुआ बनने का—"और मैं मिट्टीमें औंधे मुंह घिसटती गई। जिस अनुभव की मैं उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी उसका इस तरह भद्दा अन्त हुआ।" उसकी बहन जीत चुकी है, उसने बाजी मार ली है, यदि मैं ध्यान नहीं करूंगी, तो मेरी बहन सदा ही जीतेगी। मैं तो हमेशा हारती हूँ, हमेशा मिट्टी में गिरी रहती हूँ। सुरक्षित होने का तो यही उपाय है कि सबसे आगे रहा जाय।" हम यह भी समझ सकते हैं कि बहन माता के प्रसंग में भी जीत चुकी है; और यही कारण है कि छोटी बहन अपने पिता की ओर झुक गई।

"यह बात भी कि बाद में घुड़सवारी में मैं बहन से कहीं बढ़-चढ़ गई मेरी इस निराशा को जरा मध्यम नहीं कर सकी।" हमारे अनुमान अब सही ठहरे हैं। हम देख सकते हैं कि दोनों बहनों में कैसी होड़ रही है। छोटी सोचा करती थी, "मैं सदा पीछे रहती हूँ, मुझे आगे बढ़ने की कोशिश करनी चाहिए, मुझे दूसरों से कहीं आगे होना चाहिए।" इस प्रकार के बच्चों का

मैंने वर्णन किया है—यह प्रायः दूसरी सन्तान अथवा सबसे छोटी सन्तान में से हुआ करते हैं और किसी-न-किसी को अपना आदर्श बना लेते हैं और उस आदर्श से आगे बढ़ने का सदा यत्न करते हैं। इस लड़की के संस्मरण उसके दृष्टिकोण को दृढ़तर करते हैं, जैसे कि स्मृति उससे कहती रहती है—यदि कोई मुझसे आगे होगा तो मेरे लिए खतरा पैदा हो जायगा। मुझे तो हमेशा ही प्रथम रहना है।

४—"मेरा प्रारम्भिक संस्मरण तो महफिलों और दूसरे सामाजिक जलसों में बड़ी बहन द्वारा जो कि मेरे जन्म के समय १८ वर्ष की थी, ले जाये जाने का है।" यह लड़की अपने को समाज के एक अंग की तरह याद करती है, शायद इस संस्मरण में दूसरों से अधिक सहयोग की भावना हमें मिले। इससे १८ वर्ष बड़ी बहन ने इसके प्रति माता का कर्तव्य निभाया। परिवार में इसी बड़ी बहन ने लाड़-प्यार से इसे बिगाड़ा, परन्तु बुद्धिमत्ता दिखाकर बच्चे की दिलचस्पी दूसरों तक फैलाई जान पड़ती है।

"क्योंकि चार लड़कों के परिवार में मेरे जन्म तक मेरी बहन ही एक लड़की थी, अतः यह स्वाभाविक था कि मेरा प्रदर्शन करके वह खुश हो।" यह बात तो जैसा हमने सोचा था वैसी भली नहीं मालूम दी। जब किसी बच्चे का "प्रदर्शन" किया जाता है तो सम्भव है कि सम्प्रदान की जगह प्रशंसा पाने में बच्चा अधिक दिलचस्पी लेने लगे। "इसलिए जबकि मेरी उम्र छोटी ही थी, वह मुझे बाहर घुमाने लगी। इन महफिलों के

विषय में मुझे जो एक बात याद है वह यह है कि कुछ-न-कुछ बोलने के लिए मुझे सदा प्रेरित किया जाता था, "इन्हें अपना नाम बताओ—और इसी तरह की दूसरी बातें।" शिक्षा का यह गलत ढंग है—हमें यह जानकर अचम्भा नहीं होना चाहिए कि यह लड़की तुतलाती हो अथवा बोलनेके विषयमें इसे अन्य कठिनाइयां पेश आती हों। जब कोई बच्चा तुतलाता है तो प्रायः इसका कारण यही होता है कि उसकी बोली में बहुत अधिक दिलचस्पी दिखाई जाती थी। दूसरों से साधारण ढंग से और बिना खिंचाव के बात करने के स्थान पर इसे आत्म-बोधिक (सेल्फ-कान्शस) और प्रशंसा का इच्छुक होना सिखाया गया।

"मुझे यह भी याद है कि मैं कुछ कहा नहीं करती थी और परिणामस्वरूप सदा ही घर पहुँच कर मुझे झिड़कियां पड़ा करती थीं। हुआ यह कि मैं घर से निकलने और लोगों को मिलने-जुलने से घृणा करने लगी।" हमें अपने अनुमान को बिलकुल ही बदल डालना है। अब हमें स्पष्ट है कि इसकी प्राथमिक स्मृति का अर्थ है—"मुझे दूसरे लोगों के सम्पर्क में लाया गया परन्तु मुझे यह भला नहीं लगा। इन्हीं अनुभवोंके कारण तभी से मैं ऐसे सहयोग से घृणा करती हूँ।" हम आशा करते हैं कि अब भी वह लोगों से मिलना-जुलना नापसन्द करती है। हम समझते हैं कि उनसे मिलनेपर वह झिझकसे भरी और आत्म-बोधिक होगी और यही सोचती रहेगी कि उसके लिए चमकना तो आवश्यक है लेकिन साथ ही वह यह अनुभव करती रहेगी कि उससे ऐसी

अपेक्षा करना ज्यादती है। मानव में सरलता और बराबरी के विरुद्ध उसे शिक्षा मिली है।

५—"मेरे आरम्भिक बचपन में एक घटना बड़ी विशिष्ट है। जब मैं चार वर्ष की थी तो मेरी परनानी हमें मिलने आई।" हमने देखा है कि किस तरह नानियां अपने दोहतों को बिगाड़ देती हैं; परनानियां उनसे किस तरह का व्यवहार करती हैं इस का अभी तक हमें अनुभव नहीं हुआ। "जब वह हमारे पास ही थी, हमारे परिवार की चार पीढ़ियों की एक तस्वीर ली गई।" यह लड़की अपनी परिवार-वंशावली में बड़ी दिलचस्पी ले रही है। क्योंकि अपनी परनानी का मिलने के लिए आना और तस्वीर का खिंचना उसे खूब याद है हम शायद यह निष्कर्ष निकाल सकें कि अपने परिवार से उसका घना सम्बन्ध है। यदि हम ठीक हों तो हम जान सकेंगे कि उसकी सहयोग करने की सामर्थ्य अपने परिवार की सीमाओं को नहीं लांघ पाती।

"मुझे साफ याद है मोटर पर चढ़कर हम एक दूसरे शहर में गये और वहां फोटोग्राफर की दूकान पर अपने कपड़े बदल कर मैंने कशीदा कढ़े हुए सफेद कपड़े पहन लिये।" शायद यह लड़की भी दर्शक प्रकार की है। "चार पीढ़ी की इकट्ठी तस्वीर खिंचने से पहले मेरे भाई और मेरी एक तस्वीर उतारी गई।" परिवार में दिलचस्पी फिर प्रत्यक्ष होती है। उसका भाई भी परिवार का ही अंग है और मेरा अनुमान है कि भाई से इसके सम्बन्ध के विषय में हम और कई बातें सुनेंगे। "मेरे पास ही एक कुर्सी

की बाजू पर उसे बिठलाया गया और एक चमकदार लाल गेंद पकड़ने के लिए उसे दी गई।" यहां भी देखी गई बातें खूब याद हैं। "मैं कुर्सी के एक ओर खड़ी थी और पकड़ने के लिए मुझे कुछ नहीं दिया गया।" यहां लड़की का मुख्य अन्तरभाव स्पष्ट होता है। वह अपने से कहती है कि भाई का पक्षपात होता है। हम यह अनुमान भी लगा सकते हैं कि छोटे भाई के जन्म और उस द्वारा सबसे छोटे होने और लाड-प्यारके स्थान के छिन जाने को उसने पसन्द नहीं किया था। "हमें मुसकराने को कहा गया।" उसका मतलब है—"उन्होंने मुझे मुसकराने की कोशिश की, परन्तु मैं किस बूते पर मुसकराती? उन्होंने मेरे भाई को सिंहासन पर बिठाया और एक चमकदार लाल गेंद भी दिया, परन्तु उन्होंने मुझे क्या दिया?"

"उसके बाद चार पीढ़ी वाली तस्वीर खींची गई। मेरे सिवाय सबने अपना अच्छे-से-अच्छा ढंग बनाने का यत्न किया। मैं नहीं मुसकरा सकी।" परिवार के विरुद्ध उसका रवैया आक्रमणात्मक है क्योंकि परिवार उससे भला नहीं बरतता। इस प्रथम संस्मरण में हमें यह बताना वह नहीं भूल सकी कि उसके परिवार का उसके प्रति क्या व्यवहार था। "जब मेरे भाई को कहा गया तो वह बड़े अच्छे ढंग से मुसकराया। वह बड़ा चतुर था। आज तक अपनी तस्वीर खिंचवाने से मुझे घृणा है।" इस प्रकार के संस्मरण हमें उस तरीके का पर्याप्त अन्तर्ज्ञान देते हैं जिस द्वारा कि हममें से बहुत-से जीवन से परिचय पाते हैं। हम एक

अनुभूति लेते हैं और इसका प्रयोग कितनी ही प्रकार की क्रिया-ओं का औचित्य सिद्ध करने में करते हैं। हम उससे निष्कर्ष निकालते हैं और इस तरह व्यवहार करते हैं जैसे वही निष्कर्ष वास्तविक सत्य हो। प्रत्यक्ष है कि वह तस्वीर उतरवाते समय उसे अच्छा अनुभव नहीं हुआ था। वह अब भी तस्वीर खिंचवाने से घृणा करती है। साधारणतया हम यही पायंगे कि इसी तरह कोई व्यक्ति यदि किसी बात से घृणा करता है तो वह अपनी नापसंदगी के लिए कोई कारण चुन लेता है, अपने अनुभवों में से कोई ऐसा अनुभव चुन लेता है जिस पर उस नापसन्दगी का औचित्य सिद्ध करने का सारा बोझ डाला जा सके। इस प्रथम संस्मरण ने लेखिका के व्यक्तित्व को जानने के दो मुख्य आधार दिये हैं। पहला तो यह कि वह दर्शक प्रकार की है। दूसरा,जोकि पहले से अधिक महत्वपूर्ण है, यह कि अपने परिवार से उसके घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। प्रथम स्मृति का सारा क्रिया-क्षेत्र परिवार की सीमा में ही अवरुद्ध है। कदाचित् सामाजिक जीवन के लिए यह उपयुक्त भी नहीं है।

६—"मेरे प्रारम्भिक संस्मरणों में से एक, शायद यह सर्व-प्रथम संस्मरण नहीं है, वह घटना है जोकि जब मैं साढ़े तीन वर्ष की थी तब घटी थी। एक लड़की, जो मेरे माता-पिता का काम किया करती थी, मुझे और मेरे एक निकट के सम्बन्धी को नीचे तहखाने में ले गई और वहां हमें शराब का स्वाद चखाया। हमें बड़ा ही स्वाद आया।" यह तो एक दिलचस्प खोज है कि हमारे

यहां तहखाने हों और वहां शराब हो। यह तो अन्वेषण की एक यात्रा थी। यदि अभी ही हमें निष्कर्ष निकाल लेने हों तो इन दो बातों में से एक का अनुमान हम लगा सकते हैं—कदाचित् यह लड़की नई-नई परिस्थितियों का मुकाबला करना पसन्द करती है और जीवन के प्रति इसका दृष्टिकोण उत्साहपूर्ण है। दूसरी ओर कदाचित् उसका मतलब है कि ऐसी दृढ़ आत्म-शक्ति के लोग हैं हैं जो हमें गुमराह कर सकते हैं और फंसा सकते हैं। स्मृति का शेष हिस्सा इन अनुमानों में हमारी सहायता कर सकेगा। "कुछ देर बाद हमने निश्चय किया कि हम एक बार फिर स्वाद चखेंगे और तदनुसार हमने अपनी इच्छा-पूर्ति करनी आरम्भ की।" यह लड़की हिम्मत वाली है। यह स्वतन्त्र होना चाहती है। "कुछ ही समय में मेरी टांगों में चलने-फिरने की हिम्मत न रही। तहखाना नमी से भरा हुआ था क्योंकि हमसे शराब फर्श पर फैल गई थी।" अब देखिए किस तरह एक नशे-विरोधी का जन्म होता है।

"मुझे नहीं मालूम कि क्या यह घटना मेरे शराब-विरोध और दूसरी नशीली चीजों की नापसन्दगी से किसी तरह सम्बन्धित है।" एक छोटी-सी घटना को जीवनके प्रति समस्त दृष्टिकोण का फिर कारण बनाया जा रहा है। यदि हम व्यावहारिक बुद्धि से इस पर ध्यान दें तो इस घटना में हमें कोई ऐसा भारी महत्त्व नहीं मिलेगा जिससे कि ऐसे परिणाम तक पहुँचा जाय। लेकिन इस लड़की ने मादक पेय पदार्थों से घृणा करने का गुप्त रीति से

इसे ही कारण बनाया हुआ है। कदाचित् हमें यह पता चले कि यह एक ऐसी स्त्री थी जो सीख गई थी कि भूलों से किस तरह शिक्षा ग्रहण की जाय। कदाचित् यह बिलकुल ही स्वतन्त्र स्वभाव की हो और यह जानने पर कि यह गलती में है सच ही अपने में सुधार करने की इच्छुक हो। सम्भव है कि चरित्र की यह विशिष्टता उसके सारे जीवन को प्रभावित करे, जैसे कि वह कह रही हो—"मैं भूलें करती हूं, परन्तु जब यह जान जाती हूँ कि वह भूलें हैं तो उन्हें सुधार लेती हूँ।" यदि ऐसा है तो वह बहुत भले प्रकार की है: सक्रिय, अपने प्रयत्नों में उत्साहपूर्ण, अपनी परिस्थिति को नित्य सुधारती हुई और जीवन बिताने के सर्वोत्तम मार्ग को सदा खोजने वाली।

इन सब उदाहरणों में हम केवल अनुमान की कला में ही शिक्षा ले रहे हैं, और यह जानने से पहले कि हमारे निष्कर्ष ठीक थे हमें उन व्यक्तित्वों की कितनी दूसरी अभिव्यक्तियों की विवेचना करनी पड़ेगी। अब हम कुछ उदाहरण अपनी दिनचर्या से लें जहाँ कि व्यक्तित्व की एकता अपनी सभी अभिव्यक्तियों में देखी जा सकेगी।

एक पैंतीस बरस का मनुष्य, जो चिन्ता सम्बन्धी स्नायविक-तनाव से पीड़ित था, मेरे पास उपचार के लिए आया। उसे चिन्ता तभी घेरती थी जब वह घर से बाहर होता था। कभी-कभी नौकरी करने पर वह मजबूर होता था, परन्तु जैसे ही उसे किसी दफ्तर में बिठलाया जाता था वह सारा दिन रोता और चीखता रहता था

तथा रात को घर लौटकर मां के पास बैठकर ही चुप हो पाता था। जब उससे प्रथम संस्मरण के विषय में पूछा गया तो उसने कहा—"जब मैं चार बरस का था मुझे अपने घर में खिड़की के पास बैठकर बाहर सड़क को देखना और लोगों को काम करते हुए देखने में बड़ा आनन्द आता था।" दूसरों को काम करते हुए वह देखना चाहता है। खुद खिड़की पर बैठकर केवल उन्हें देखना ही चाहता है। यदि उसकी दशा में परिवर्तन करना है तो हम ऐसा उसे उसके इस विश्वास से छुड़ाकर ही कर सकेंगे कि वह दूसरों के काम में सहायक नहीं हो सकता। अब तक उसने यही सोचा है कि जीने का तरीका दूसरों का सहारा पाने में ही है। हमें उसका सारा रवैया ही बदलना है। उसे बुरा कहकर तो कुछ नहीं बनेगा। दवाइयां देकर या पौष्टिक पदार्थ देकर उसे विश्वास नहीं दिलाया जा सकता। उसकी आरम्भिक स्मृति अलबत्ता हमारे लिए यह आसान कर देती है कि उसे ऐसा काम सुझाएं जिसमें उसकी दिलचस्पी हो। उसकी मुख्य दिलचस्पी दूसरों को काम करते हुए देखने में है। हमें पता चला कि उसकी दूर की नजर कमजोर थी, और इस कमी के कारण वह सदा दृष्टव्य बातों को अधिक ध्यान देता रहा है। जब उसने व्यवसाय सम्बन्धी समस्याको सुलझाना शुरू किया तो उसकी प्रवृत्ति थी कि महज देखता-भर रहे, काम न करे। परन्तु यह दोनों तो परस्पर विरोधी बातें हैं। उपचार के बाद जब वह ठीक हो गया तो उसने ऐसा व्यवसाय ढूंढ लिया जो उसकी मुख्य दिलचस्पी से मेल

खाता था। उसने कला-कृतियों की एक दूकान खोल ली और इस तरह अपनी शक्ति अनुसार मानवीय श्रम-विभाजन में अपना हिस्सा बंटाने में सफल हुआ।

एक बत्तीस वर्ष की आयु का मनुष्य जिसे वाक-रोध (ऐफेजिया) का रोग था मेरे पास उपचार के लिए आया। वह फुसफुसाहट से अधिक जोर से बोल नहीं सकता था। उसकी ऐसी दशा दो वर्ष से थी। इसका आरम्भ उस दिन हुआ जब उसका पांव केले के छिलके पर फिसला और वह एक मोटर-टैक्सी के दरवाजे से जा टकराया। दो दिन उसे उल्टी होती रही और उस के बाद सिर दर्द उसे दबाए रहा। इसमें सन्देह नहीं कि उसके दिमाग को आघात पहुंचा था; परन्तु, क्योंकि उसके गले में कोई आङ्गिक परिवर्तन नहीं हुआ था,केवल दिमाग का आघात ही इस बातकी पूरे तौरसे व्याख्या नहीं कर सकता था कि वह बोल क्यों नहीं सकता था। लगभग दो महीने तक वह बिलकुल ही गूंगा रहा। वह दुर्घटना अब अदालतमें पेश थी;मुकदमा अभी समाप्त नहीं हुआ। उसका कहना है कि दुर्घटना के लिए टैक्सी-ड्राईवर ही उत्तरदायी है और इसलिए हरजाने का दावा उसने टैक्सी की कम्पनी पर किया है। हम समझ सकते हैं कि दावेके मुकदमे में इसी प्रकार का कोई बड़ा आघात दिखाकर उसकी स्थिति बेहतर रहेगी। हमें यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वह प्रपञ्ची है। परन्तु ऊंचा बोलने के लिए उसे कोई बड़ी प्रेरणा नहीं मिली। कदाचित् उस दुर्घटना के आकस्मिक आघात के बाद बोलने में

उसे सच्ची कठिनाई भी पेश आई हो और अब इस दशा को बदलने का उसे कोई कारण नहीं दीखा।

इस रोगीने अपना गला गलों के विशिष्ट डाक्टर को दिखाया, लेकिन डाक्टर को कोई बीमारी समझ नहीं आई। अपनी पहली स्मृतिके विषयमें पूछने पर उसने बताया—"पीठके बल लेटा हुआ मैं पालने में झूल रहा था। मेरे देखते-देखते पालने का बांध खुल गया, पालना गिर गया और मुझे खूब चोट लगी।" गिरना तो कोई नहीं चाहता, लेकिन यह व्यक्ति गिर जाने पर अधिक महत्त्व दे रहा था। गिरने के भय पर उसका ध्यान केन्द्रित हो चुका है। यह उसकी मुख्य दिलचस्पी बन गया है। "मेरे गिरने के साथ ही दरवाजा खुला और मां अन्दर आई और अतीव दुखी हुई।" गिरने के कारण वह माता के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित कर सका। परन्तु यह स्मृति एक उलाहने के बराबर भी है—"जितना उसे मेरा ख्याल करना चाहिए था उतना उसने नहीं किया।" इसी तरह वह टैक्सी-ड्राईवर भी गलती पर था और वह कम्पनी भी जिसकी वह टैक्सी थी। इनमें से किसीने भी उसका उचित ध्यान नहीं किया। यह जीवन-प्रणाली लाड-प्यार से बिगड़े एक बच्चे की है: यह दूसरों को अपने लिए उत्तरदायी ठहराना चाहता है। उसकी दूसरी स्मृति में भी यही बात दोहराई गई है।" पांच वर्ष की अवस्था में मैं बीस फुट नीचे गिरा और मेरे ऊपर लकड़ी का एक भारी फट्टा था। पांच मिनट तक मैं कुछ बोल नहीं सका।" यह व्यक्ति तो बोली गंवा बैठने में चतुर दीखता है। उसने इसी

का अभ्यास किया है और गिरने को बोलने से इन्कार करने का कारण बना लेता है। हम इसे कारण नहीं समझ सकते; परन्तु जान पड़ता है कि वह इसे कारण समझता है। इस ढङ्ग का उसे अभ्यास है, और अब जब कि वह गिरता है तो यह स्वाभाविक हो जाता है कि वह बोल नहीं सकता। उसका उपचार तभी सम्भव है जब कि वह यह समझ जाय कि यह भूल है—गिरने और बोली बन्द होने में कोई सम्बन्ध नहीं, विशेषतया यदि वह यह समझ ले कि किसी दुर्घटना के बाद दो वर्ष तक उसे फुसफुसाते फिरने की कोई आवश्यकता नहीं। लेकिन अपने संस्मरण में वह यह भी बता देता है कि यह समझना उसके लिए कठिन क्यों है। उसने अपनी बात जारी रखते हुए कहा—"मेरी माता बाहर आई। वह बड़ी उत्तेजित दीख पड़ती थी।" दोनों अवसरों पर उसके गिरने से माता उत्तेजित हुई और उसका ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हुआ। यह एक ऐसा बच्चा था जो लाड-प्यार चाहता था, दूसरों के ध्यान का केन्द्र बनना चाहता था। हम समझ सकते हैं कि इन आप-बीती दुर्घटनाओं का मुआवजा वह किस रूप में लेना चाहता है। लाड़-प्यार से बिगड़े दूसरे बच्चे ऐसी दुर्घटनाओं के शिकार होने पर ऐसा शायद ही करें। लेकिन यह सम्भव है कि वाणी-विकार के ढङ्ग का उन्हें पता न चल सके। यह तो हमारे रोगीकी विशिष्टता है; अपने अनुभवों से जिस जीवन-प्रणाली की उसने रचना की है यह उसीका अंश है।

एक छब्बीस वर्ष का नवयुवक मेरे पास यह शिकायत लेकर

आया कि वह किसी सन्तोषप्रद व्यवसाय की तलाश नहीं कर सकता। आठ बरस हुए उसके पिता ने उसे दलाली के काम में डाला था; परन्तु इस काम को उसने कभी पसन्द नहीं किया और हाल ही में छोड़ भी दिया। उसने किसी दूसरे काम की तलाश की; परन्तु सफल नहीं हुआ। उसे नींद न आने की भी शिकायत थी और आत्म-हत्या के विचार उसे रह-रहकर सताया करते थे। जब दलाली का काम उसने छोड़ दिया, तो वह घर छोड़कर भाग गया और किसी दूसरे शहर में नौकरी ढूंढ ली; परन्तु एक पत्र में अपनी माता की बीमारी का समाचार पाकर वह परिवार के साथ ही रहने के लिए लौट आया।

इस आप-बीती से ही हम अनुमान लगा सकते हैं कि इसकी माता ने लाड-प्यार करके इसे बिगाड़ रखा था और इसका पिता इस पर अपना प्रभुत्व जमाकर रखना चाहता था। कदाचित् हमें यह भी पता चले कि इसका जीवन पिता की कठोरता के विरुद्ध विद्रोह था। जब परिवार में उसकी दशा के विषय में उससे पूछा गया तो उसने उत्तर दिया कि अपने माता-पिता का वह सबसे छोटा बच्चा और एक ही लड़का था। उसकी दो बहनें थीं; बड़ी सदा उस पर रौब छांटा करती थी और छोटी भी भिन्न नहीं थी। उसके पिता लगातार उसे टोका करते थे और उसे यह बात बहुत चुभती थी कि सारा परिवार ही उस पर प्रभुत्व जमाता था। केवल माता ही उसकी मित्र थी।

१४ वर्ष का होने तक वह स्कूल जाता रहा। उसके बाद उसके

पिता ने एक कृषि-विद्यालय में उसे प्रविष्ट करवा दिया ताकि खेती के लिए जिस भूमि को खरीदने की वह योजना बना रहा था उस में वह सहायक हो सके। यह लड़का स्कूल में अच्छी तरह पढ़ता रहा परन्तु उसने यही फैसला किया कि वह खेती-बाड़ी का काम नहीं करेगा। फिर उसके पिता ने उसे दलाली के दफ्तर में जगह ले दी। यह हैरानी की बात है कि वह आठ वर्ष तक इस काम में जुटा रहा; परन्तु इसका कारण वह यह देता है कि जहां तक सम्भव था वह माता के लिए कुछ करना चाहता था।

बचपन में वह ढीला, सुस्त और डरपोक था; अंधेरे और अकेलेपन से वह भय खाता था। हम जब भी किसी ढीले बच्चे के विषय में सुनें तो हमें उस व्यक्ति की तलाश करनी चाहिए जो उसे उसके लिए साफ-सुथरा रखा करता है। जब हम ऐसे बच्चे की बात सुनें जो अंधेरेसे डरता हो और अकेला छोड़ा जाना ना-पसन्द करता हो तो हमें ऐसे व्यक्ति की तलाश करनी चाहिए जिस का ध्यान वह आकृष्ट कर सकता है और जो उसे आश्वासन दिया करता है। इस नवयुवक के लिए वह व्यक्ति इसकी माता थी। दोस्त बनाना इसने कठिन समझ लिया था परन्तु अपरिचितों में काफी हद तक वह मिल-जुल सकता था। उसने कभी प्रेम नहीं किया था; प्रेम में उसकी दिलचस्पी भी नहीं थी और वह कभी विवाह नहीं करना चाहता था। अपने माता-पिता की विवाहावस्था को वह सुखी नहीं समझता था; और इससे हम समझ सकेंगे कि क्यों अपने लिए उसने विवाह की बात भुला रखी थी।

दलाली के काम में लगे रहने के लिए अब भी उसका पिता दबाव डाला करता है। स्वयं वह विज्ञापन के व्यवसाय में जाना चाहता है परन्तु उसे निश्चय है कि इस व्यवसाय की तैयारी के लिए परिवार की ओर से उसे रुपया पैसा नहीं मिलेगा। हर बात में हमें स्पष्ट होगा कि उसकी हरकतों का उद्देश्य अपने आचरण से पिता को नाराज करना ही था। जब वह दलाली के दफ्तर में था तो उसे यह नहीं सूझा, चाहे वह आत्म-निर्भर भी हो चुका था कि वह अपनी कमाई का प्रयोग विज्ञापन-कला के सीखनेमें करे। यह बात तो पिता पर एक नई मांग के रूप में वह अब सोचता है।

उसका प्रथम संस्मरण स्पष्टतया लाड-प्यारसे बिगड़े एक बच्चे के कठोर पिताके विरुद्ध शिकवेको दरशाता है।उसे याद है कि किस तरह वह पिता के होटल में काम किया करता था। प्लेटों को साफ करना और उन्हें एक मेज से दूसरे मेज पर रखना उसे पसन्द था। लेकिन इनसे जिस प्रकार वह गोल-मोल करता था उससे उसके पिता को क्रोध आ गया और ग्राहकों के सामने ही उन्होंने इसे थप्पड़ मार दिया। अपने प्रारम्भिक अनुभव को वह यह सिद्ध करने में प्रकट करता है कि इसका पिता उसका शत्रु है और उसका सारा जीवन उसीके विरुद्ध संघर्ष का रहा है। अब भी काम करने की उसकी कोई सच्ची इच्छा नहीं है,उसे तो पिता को आघात पहुँचा कर ही पूर्ण रूप से सन्तोष मिलेगा।

आत्म-हत्या के उसके विचार भी बखूबी समझे जा सकते हैं। प्रत्येक आत्म-हत्या एक शिकवा हुआ करती है, और आत्म-हत्या

की बात सोचकर जैसे वह कहता है—"मेरा पिता हर अपराध का दोषी है।" अपने व्यवसाय में उसकी असन्तुष्टि भी पिता के विरुद्ध निर्दिष्ट है। पिता जो भी योजना प्रस्तुत करता है, पुत्र उसे रद्द कर देता है, परन्तु यह तो लाड-प्यार से बिगड़ा बच्चा है और स्वतन्त्ररूप से व्यवसाय नहीं कर सकता। वास्तव में वह काम ही नहीं करना चाहता; वह तो खेलना चाहता है; परन्तु माता से उस का कुछ सहयोग अभी शेष है। परन्तु अपने पिता से संघर्ष उसकी नींद न आने की लत की किस तरह व्याख्या दे सकता है ?

यदि वह सो नहीं सकता तो अगले दिन काम के लिए उसकी तैयारी सन्तोषप्रद नहीं है। उसका पिता काम करने के लिए उसकी प्रतीक्षा कर रहा है परन्तु लड़का तो थका हुआ है और काम नहीं कर सकता। निस्सन्देह वह यह कह सकता है—"मैं काम नहीं करना चाहता; मुझसे जबर्दस्ती नहीं चल सकती।" परंतु उधर माता के प्रति उसका लगाव है और परिवार की कमजोर आर्थिक स्थिति। यदि वह काम करने से साफ इन्कार कर दे तो उसके परिवार के सदस्य सोचेंगे कि यह तो एकदम निराशा-जनक निकला और उसके भरण-पोषण से मुंह मोड़ लेंगे। उसे तो एक अच्छे बहाने की जरूरत है; और वह इस प्रत्यक्षतः अनिच्छित दुर्भाग्य—नींद न आने से—उसे प्राप्त हो जाता है।

पहले तो उसने कहा कि उसे कभी स्वप्न नहीं दीखते, परन्तु बाद में उसे एक सपना याद आया जो उसे बार-बार दीखा करता है। उसे स्वप्न में दीखता है कि कोई दीवार पर गेंद फेंकता है और

गेंद हमेशा उछलकर दूर जा गिरता है। देखने में यह स्वप्न निरर्थक जान पड़ता है। क्या इस स्वप्न और उसकी जीवन-प्रणाली में किसी सम्बन्ध की हम खोज लगा सकते हैं। हमने इससे पूछा—"फिर क्या होता है? जब गेंद उछलकर दूर जा गिरती है तो तुम्हें कैसा लगता है?" उसने बताया—"जब-जब भी वह दूर उछला तो मेरी नींद उचट गई।" अब उसने नींद न आने के रोग की सारी रचना स्पष्ट करके रख दी है। वह इस स्वप्न का प्रयोग घड़ी की घंटी की तरह नींद से जागने के लिए करता है। वह कल्पना करता है कि प्रत्येक मनुष्य उसे आगे बढ़ाने के लिए धक्का देता है, उससे वह काम करवाने के लिए, जिन्हें वह नापसन्द करता है, मजबूर करता और फेरता है। वह स्वप्न देखता है कि कोई दीवार पर गेंद फेंक रहा है। इसी वक्त वह हमेशा जाग जाया करता है। परिणामस्वरूप अगले दिन वह थका-थका-सा रहता है, और थके होने पर काम नहीं कर सकता। उसका पिता इस विषय में चिन्तित रहता है कि वह काम किया करे, और इस तरह घुमा-फिराकर वह अपने पिता को पराजित कर देता है। यदि हम इसकी पिता के विरुद्ध लड़ाई को देखें तो ऐसे साधन अपनाने पर हमें उसे बड़ा बुद्धिमान् मानना होगा। लेकिन उसकी जीवन-प्रणाली अपने अथवा दूसरों के लिए बहुत सन्तोषप्रद नहीं है और उसे बदलने के लिए हमें उसकी सहायता अवश्य करनी चाहिए।

जब मैंने उसके स्वप्न की व्याख्या कर दी तो उसे यह स्वप्न

दीखना बन्द होगया, परन्तु उसने बताया कि अब भी कभी-कभी रात को वह जाग जाया करता है। स्वप्न को जारी रखने की हिम्मत तो उसमें अब नहीं है क्योंकि उसने देखा कि स्वप्न के उद्देश्यका पता चल सकता है,परन्तु अगले दिनके लिए अब भी वह अपने को थका लेता है। उसे सहायता देने के लिए हम क्या करें; उसका एक ही तरीका हो सकता है और वह यह कि पिता के प्रति उसके दृष्टिकोण को बदला जाय। जब तक उसकी सारी दिलचस्पी पिता को चिढ़ाने और हराने में ही व्यस्त होगी, तब तक वह कुछ भी सुधर नहीं सकता। मैं यह मानकर बढ़ता हूं, जैसा कि अवश्य ही मानकर हमें बढ़ना चाहिए, कि रोगी के रवैये में भी औचित्य है। मैंने कहा—"जान पड़ता है कि तुम्हारे पिता एक-दम गलती में हैं। यह उनकी भूल है जो हरदम अपना प्रभुत्व जताना चाहते हैं और तुम पर छाए रहना चाहते हैं। शायद उनकी वृद्धावस्था है और उनका उपचार होना चाहिए। परन्तु तुम क्या कर सकते हो? तुम उन्हें बदलने की आशा नहीं कर सकते। समझो कि वर्षा हो रही है,इस हालत में तुम क्या कर सकते हो? तुम एक छाता हाथ में ले सकते हो अथवा टैक्सी में बैठ सकते हो, परन्तु वर्षा के विरुद्ध लड़ने अथवा उसे वश में करने के प्रयत्नों का तो कोई अर्थ नहीं होगा! इस समय तुम वर्षा से लड़ने में अपना समय खर्च कर रहे हो। तुम समझते हो कि यही बल का लक्षण है। तुम्हारा विश्वास है कि तुम विजय भी पा रहे हो। परन्तु तम्हारी विजय दूसरों से अधिक तुम्हें ही हानि

पहुंचा रही है।" मैं उसकी सभी अभिव्यक्तियों के ऐक्य को दिखाता हूं—व्यवसाय के सम्बन्ध में उसकी अनिश्चितता, आत्म-हत्या के विचार, घर से भागना, नींद का न आना; और मैं उसे बताता हूं कि किस तरह इन सबमें अपने पिता को दण्ड देने के बदले वह अपने आपको दण्ड दिये जा रहा है।

मैं उसे यह भी सलाह देता हूं—'जब आज रात को तुम सोने लगो तो यह सोचना कि रात को बार-बार तुम अपने को जगाना चाहते हो ताकि तुम कल थके होओ। यह भी सोचना कि कल तुम इतने थके होओगे कि काम पर नहीं जा सकोगे और तुम्हारे पिता क्रोध से फड़क उठेंगे। मैं चाहता हूं कि वह सत्य का सामना करे। उसकी मुख्य दिलचस्पी तो पिता को चिढ़ाने और चोट पहुंचाने में ही है। जब तक इस संघर्ष को हम बन्द नहीं करते, उपचार कोई लाभ नहीं पहुंचा सकेगा। यह लाड-प्यार से बिगड़ा एक बच्चा है, हम सभी यह देख सकते हैं, और अब वह खुद भी यह देखने लग गया है।

यह स्थिति तथाकथित 'अतिशय मातृ-प्रेम और पितृ-द्वेष' से मिलती है। यह नवयुवक अपने पिता को हानि पहुंचाने में रत है, और अपनी माता से घनिष्ठतया बंधा है। लेकिन इस बन्धन में कामुकता नहीं है। इसको माता ने इससे लाड-प्यार किया है और पिता का व्यवहार उससे सहानुभूति-पूर्ण नहीं रहा है। इसने गलत शिक्षा प्राप्त की है और स्थिति का गलत अभिप्राय समझा है। इसकी कठिनाइयों में पैतृक स्वभाव को कोई स्थान नहीं है।

यह स्वभाव इसे अपने जंगली पूर्वजों से नहीं मिला जो गिरोह के मुखिया को मारकर खा जाया करते थे। इसे तो उसके अपने अनुभवों में जन्म मिला है। इस तरह का रवैया प्रत्येक बच्चे में पैदा किया जा सकता है। हमें तो केवल यही चाहिए कि मां बच्चे से लाड-प्यार करके उसे बिगाड़े, जैसा कि इसकी मां ने किया, पिता कठोर हो जैसा कि इसका पिता था। यदि बच्चा अपने पिताके विरुद्ध विद्रोह करता है और अपने सामने प्रस्तुत समस्याओं को स्वतन्त्रता से सुलझाने में विफल हो जाता है तो हमें स्पष्ट हो जायगा कि ऐसी जीवन-प्रणाली को अपनाना कितना सरल काम था।

राजकमल मनोविज्ञान-माला

१ बचपन के पहले पांच साल
२ हीन-भाव : इसका विश्लेषण और उपचार
३ बचपन : पांच से दस साल
४ हमारे जीवन का अर्थ : (भाग एक)
५ प्रेम और विवाह
६ हमारे जीवन का अर्थ : (भाग दो)
७ व्यक्तित्व
८ स्मरण-शक्ति